सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

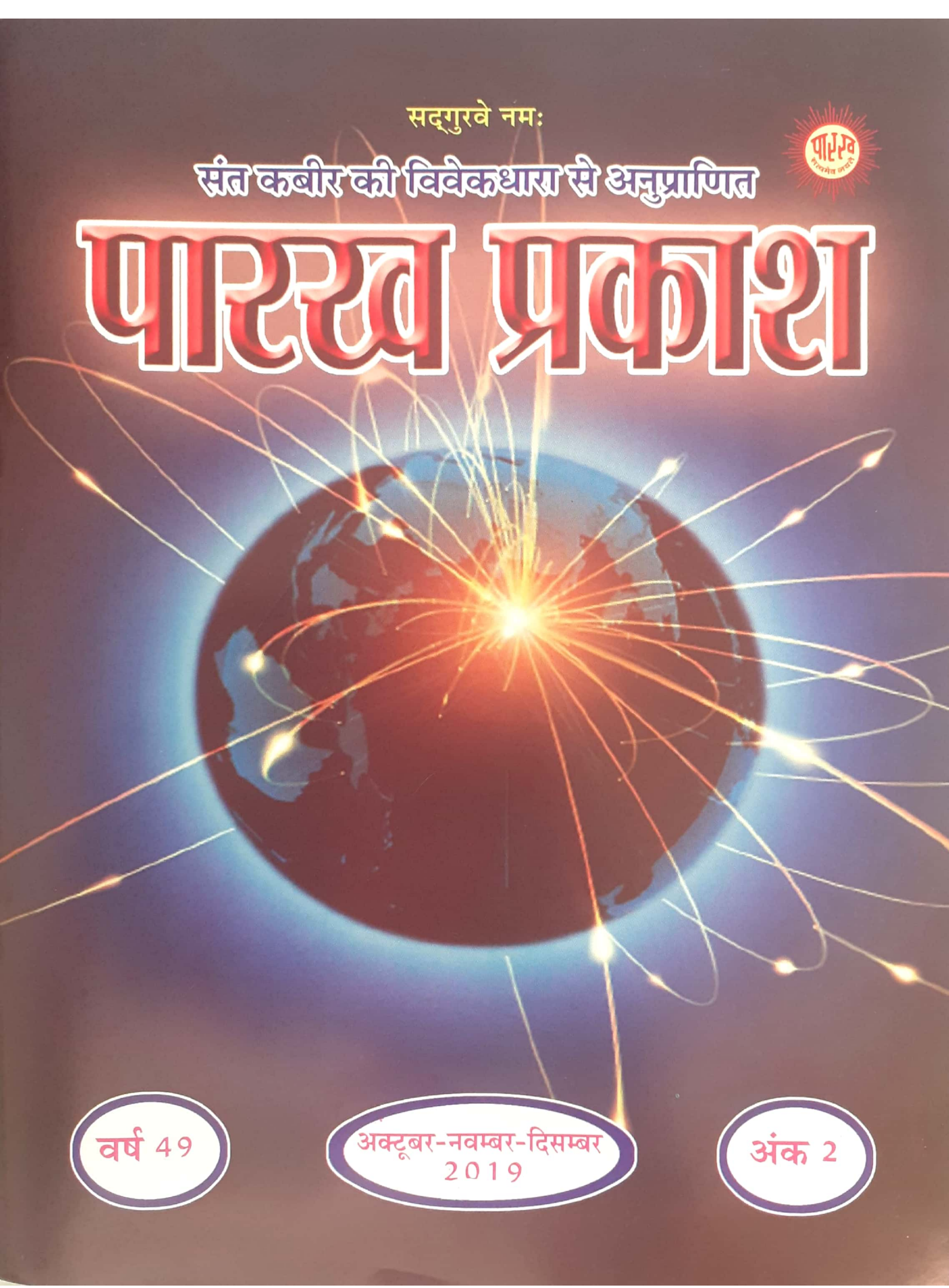

वर्ष 49

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर
2019

अंक 2

Scanned by CamScanner

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

(प्रथम खण्ड : तेइसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : बाइसवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य—प्रथम खण्ड 250 रु०, द्वितीय खण्ड 250 रु०।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 13.00 रुपये, वार्षिक 50 रुपये, आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, पन्ना लाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

Scanned by CamScanner

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

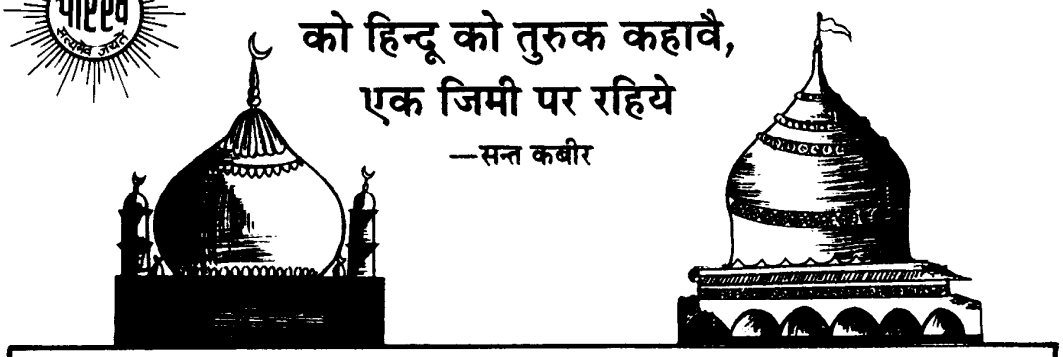

पारख प्रकाश

करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस ।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास ॥ बीजक, सद्गुरु कबीर ॥

वर्ष 49] प्रयागराज, क्वार, वि. सं. 2076, अक्टूबर 2019, सत्कबीराब्द 621 [अंक 2

जस मास पशु की तस मास नर की, रुधिर रुधिर एक सारा जी ॥ 1 ॥
पशु की मास भखें सब कोई, नरहिं न भखें सियारा जी ॥ 2 ॥
ब्रह्म कुलाल मेदनी भइया, उपजि बिनशि कित गइया जी ॥ 3 ॥
मास मछरिया तै पै खइया, ज्यों खेतन में बोइया जी ॥ 4 ॥
माटी के करि देवी देवा, काटि काटि जिव देइया जी ॥ 5 ॥
जो तोहरा है साँचा देवा, खेत चरत क्यों न लेइया जी ॥ 6 ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम नाम नित लेइया जी ॥ 7 ॥
जो कछु कियहु जिभ्या के स्वारथ, बदला पराया देइया जी ॥ 8 ॥

× × ×

कहहु हो अम्मर कासों लागा, चेतनहारा चेत सुभागा ॥ 1 ॥
अम्मर मध्ये दीसे तारा, एक चेता एक चेतवनहारा ॥ 2 ॥
जो खोजो सो उहवाँ नाहीं, सो तो आहि अमरपद माहीं ॥ 3 ॥
कहहिं कबीर पद बूझै सोई, मुख हृदया जाके एकै होई ॥ 4 ॥

मानव तू है सबसे महान

धर्म के क्षेत्र में सभी मत-मजहब-संप्रदाय के धर्मगुरु, अनुयायी, यहां तक सामान्य आम लोग भी यही कहते हैं और सभी मत-मजहब-संप्रदाय के धर्मग्रन्थों में यह लिखा गया है कि ईश्वर, खुदा, गॉड सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान है और दुनिया में जो कुछ भी अच्छे-बुरे कर्म हो रहे हैं सब उसकी ही इच्छा और प्रेरणा से हो रहे हैं। उसकी इच्छा और प्रेरणा के बिना एक तृण भी नहीं हिल सकता। सबकुछ का कर्ता-धर्ता ईश्वर ही है। परंतु ऐसा ईश्वर कहां है, किस रूप-रंग वाला है, एकदेशी है या सर्वदेशी-सर्वव्यापक है—इस पर अनेक अवधारणाएं, मान्यताएं एवं कल्पनाएं हैं। क्योंकि ईश्वर अनुभव का नहीं सिर्फ अनुमान का विषय है। ईश्वर को मन-वाणी-इंद्रिय से परे बताया गया है और जो मन-वाणी-इंद्रिय से परे होगा वह अनुभव का विषय हो ही नहीं सकता, वह किसी के अनुभव में आ ही नहीं सकता। वह सदैव अनुमान का विषय होगा, उसके बारे में सिर्फ अनुमान ही किया जा सकता है। इसीलिए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे।
(केन उपनिषद्, 1/3)

अर्थात न वहां आंखें पहुंचती हैं, न वाणी पहुंचती है, न मन पहुंचता है और न हम उसे जानते हैं। हम नहीं समझ पाते कि शिष्यों को उसका उपदेश कैसे करें। वह विदित (ज्ञात-जाना हुआ) और अविदित (अज्ञात-न जाना हुआ) से अलग ही है। हमारे पूर्वजों ने ऐसा हमें बताया है, हम उनसे इसी तरह सुनते आये हैं।

ऋषि यहां बहुत ईमानदारीपूर्वक अपनी बात कहते हैं। जो मन-वाणी-बुद्धि, इंद्रिय से परे-अतीत है उसके बारे में ऐसा ही कहा जायेगा। इसीलिए ऊपर कहा गया है कि ईश्वर अनुभव का नहीं अनुमान का विषय है।

यदि कोई सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान, दयालु ईश्वर है तो बड़ी खुशी की बात है और यदि नहीं है तो उसके बारे में बहुत सोचने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर हो या न हो, ईश्वर को मानने और न मानने वाले मनुष्य तो हैं ही। मनुष्य तथा मनुष्य के अलावा जो प्राणी हैं उनके साथ प्रेम, दया, करुणा एवं सेवा का व्यवहार किया जाये तो यह धरती आकाश में माने गये स्वर्ग से भी बढ़कर सुंदर और सुखद बन जाये।

सभी मत-मजहब-संप्रदाय के धर्मग्रन्थों में जो कहा गया है कि ईश्वर सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान तथा सबसे बढ़कर है उसके विपरीत महाभारत (शांतिपर्व 299/20) में वेदव्यासजी कहते हैं—गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। अर्थात मैं एक गोपनीय रहस्य बताता हूं कि मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है।

ईश्वर तो अप्रत्यक्ष है किन्तु मनुष्य प्रत्यक्ष है। ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने वाला भी मनुष्य है तो अप्रमाणित करने वाला भी मनुष्य है। ईश्वर की पूजा-भक्ति करनेवाला भी मनुष्य है और नहीं करनेवाला भी मनुष्य ही है। मनुष्य न हो तो ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित कौन करेगा और ईश्वर को न मानने वालों को नास्तिक-काफिर कौन कहेगा। इसीलिए महर्षि वेदव्यास कहते हैं कि मनुष्य से बढ़कर कोई नहीं है।

सारे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, मत-मजहब-संप्रदाय का आधार तथा सारे प्रमाणों का प्रमाता यह मनुष्य ही तो है। मनुष्य न हो तो इन सबका क्या आधार रह जायेगा। परंतु सबका महत्त्व और मूल्य स्थापित करने वाला मनुष्य स्वयं अपना महत्त्व और मूल्य नहीं समझ पा रहा है इसीलिए वह दीन-दुर्बल बना सर्वत्र भटक रहा है और जगह-जगह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा रहा है। यदि वह अपने महत्त्व और मूल्य को समझ जाये तो उसका भटकना और गिड़गिड़ाना बंद होकर वह अपने आप में स्थित और कृतार्थ हो जाये। धरती का उदाहरण देते हुए अन्योक्ति अलंकार में इसी

तथ्य की ओर संकेत करते हुए सद्गुरु कबीर कहते हैं—

सबकी उतपति धरती, सब जीवन प्रतिपाल।
धरती न जानै आप गुण, ऐसा गुरु विचार॥
धरती जानति आप गुण, कधी न होती डोल।
तिल तिल गरुवी होती, रहति ठिकों की मोल॥

(बीजक, साखी 201-202)

अर्थात सबकी उत्पत्ति धरती से होती है और धरती से ही सबका पालन होता है, परंतु धरती अपने इस गुण को नहीं जानती। यदि वह अपने इस गुण को जानती तो कभी चंचल-डोलायमान नहीं होती, अपितु सर्वांग वजनदार और अपनी ठीक मर्यादा में रहती, ऐसा गुरु का विचार है। तात्पर्य में सारे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, मत-मजहब का सृजेता मनुष्य-जीव है और यही सबका रक्षक-आधार है, परंतु वह अपने इस महान गुण-विचार को नहीं जानता-समझता। यदि वह अपने इस महान गुण को जानता तो भ्रम-कल्पना में पड़कर कभी चंचल नहीं होता, किन्तु अपनी ठीक मर्यादा में, स्वरूपस्थिति में रहता। अत्यंत ठोस और गंभीर रहता।

यह सर्वविदित तथ्य है कि सभी प्रकार के अन्न, फूल-फल, कंद-मूल, वृक्ष-वनस्पति, जंगल-पहाड़, कोयला, पत्थर, सोना-चांदी, हीरे-जवाहरात, सभी प्रकार के रत्न एवं तेल-पेट्रोल आदि तथा मनुष्य, पिण्डज, अण्डज, उष्मज सभी खानियों के प्राणियों के शरीर का उत्पत्ति-स्थल धरती है। सब धरती से ही जन्म लेते-पैदा होते हैं और सबका पालन-पोषण करने वाली तथा सबको धारण करने वाली धरती ही है। यह सब सच होते हुए भी धरती अपने इस गुण को, महिमा को नहीं जानती। यदि वह अपने इस गुण-महिमा को जानती तो कभी चंचल नहीं होती। यह कांपती नहीं और इसमें भूकंप नहीं आता, किन्तु यह सब प्रकार से सर्वांग ठोस-वजनदार होती और अपनी ठीक मर्यादा में रहती।

सजीव-निर्जीव सारे प्राणी-पदार्थों की उत्पत्ति धरती से ही होने से और सबका पालन तथा रक्षण धरती से ही होने से धरती को माता कहा जाता है, इसकी पूजा की जाती है और इसे प्रणाम किया जाता है। परंतु धरती स्वयं निर्जीव होने से तथा इसमें ज्ञान-गुण न होने से यह नहीं जानती कि मैं सबको जन्म देने वाली तथा सबका पालन एवं रक्षण करने और सबको आधार देने वाली हूं। चारों खानियों के प्राणियों के शरीर जीवों के अपने-अपने कर्मानुसार चेतन-जड़ के संयोग से उत्पन्न होते हैं और अन्न-फल-फूल-कंद-मूल, वृक्ष-वनस्पति, सभी प्रकार के रत्न-धातुएं आदि की उत्पत्ति प्रकृति के अपने गुण-धर्मों से स्वयमेव होती रहती है।

यहां धरती का उदाहरण देकर सद्गुरु कबीर ने मनुष्य-जीव की सत्ता-महत्ता का दिग्दर्शन कराया है। जिस प्रकार सारे भौतिक पदार्थों तथा सभी प्राणियों के शरीरों की जन्मदात्री तथा आधार धरती है उसी प्रकार सारे ज्ञान-विज्ञान, मत-मजहब-संप्रदाय, कला-कौशल, सारे धर्मग्रंथ एवं धर्मस्थल का आधार, जनक और रक्षक मनुष्य जीव है। मनुष्य के अतिरिक्त आज तक किसी को भी ज्ञान-विज्ञान का कथन-अन्वेषण करते, मत-मजहब-संप्रदाय का प्रवर्तन करते, कला-कौशल का विकास करते, धर्मग्रंथों की रचना करते और धार्मिक स्थलों का निर्माण करते नहीं देखा गया है। धर्मग्रंथ कहे जाने वाली किताबों में चाहे जो कुछ भी लिखा गया हो और लोक प्रचलित धारणा चाहे जो भी हो सारे ज्ञान-विज्ञान, मत-मजहब, कला-कौशल का जनक, रक्षक और आधार मनुष्य-जीव ही है। यदि मनुष्य न हो तो इन सबका कोई आधार और रक्षक नहीं रह जायेगा। इसीलिए श्री निर्मल साहेब जी कहते हैं—

सारी कला कल्पना है मनुज की।
तुम्हारी नहीं तो तुम्हारे अनुज की॥

(न्यायनामा)

यहां तक सारे देवी-देवता, ईश्वर-ब्रह्म, खुदा-गॉड, स्वर्ग-नरक आदि के स्वरूप का अवधारण, निर्धारण, मूल्यांकन, स्थापन करने वाला, व्याख्या करने वाला तथा पूजा-प्रतिष्ठादि करने वाला भी मनुष्य है। जीव-मनुष्य अल्पज्ञ, असमर्थ, लाचार, किंचिज्ञ है और जीव के करने से कुछ नहीं होता, सब कुछ का करने-कराने

वाला ईश्वर है क्योंकि वह सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वान्तर्यामी है यह कहने वाला भी मनुष्य है। धर्म का ह्रास होकर अधर्म की वृद्धि होने पर ईश्वर अवतार लेकर आता है और दुष्टों का दलन-दमन कर धर्म की पुनर्स्थापना करता है यह कहने वाला भी मनुष्य है। इसीलिए महर्षि वेदव्यास कहते हैं—न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित् अर्थात मनुष्य से बढ़कर कुछ-कोई नहीं है, परंतु ऐसा होने पर भी मनुष्य अपने इस महान गुण को नहीं जानता। यदि मनुष्य अपने इस महान गुण को जानता, अपनी सत्ता-महत्ता को समझता तो वह दीन-हीन, लाचार बनकर नहीं भटकता, दर-दर की ठोकरें नहीं खाता और अपने ही हाथों से सृजित-चित्रित जड़ मूर्तियों एवं चित्रों तथा अपने द्वारा कल्पित ईश्वर-ब्रह्म के सामने रोता-गिड़गिड़ाता नहीं और न ही भोग-मोक्ष की भीख मांगता फिरता, किन्तु अपनी बहिर्मुख चित्तवृत्ति को अंतर्मुख कर तथा अपनी शक्ति को समेटकर अपने स्वरूपभाव में स्थित होकर बाहर-भीतर से अत्यंत ठोस, वजनदार होता।

मनुष्य यह भूल गया है कि जिन ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, राम-कृष्ण आदि को भगवान मानकर वह उनकी पूजा-उपासना करता है वे भी मनुष्य ही थे। उनके मनुष्य रूप की ही पूजा-प्रतिष्ठा होती है। वाल्मीकीय रामायण के लेखक ने उत्तरकांड में राम से स्पष्ट कहलवाया है—आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्॥ अर्थात मैं अपने को मनुष्य मानता हूं। मेरा नाम राम है और मैं दशरथ का बेटा हूं। दुनिया जिनके चरणों में झुकती है वे बुद्ध, महावीर, व्यास, वसिष्ठ, ईसा, मूसा, मुहम्मद, कपिल, कणाद, जैमिनि, पतंजलि, लाओत्ज़े, सुकरात, जरथुस्त्र, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानंद, सद्गुरु कबीर, बड़े-बड़े वैज्ञानिक, कलाकार आदि सभी गणमान्य महापुरुष मनुष्य ही थे। इन सभी महापुरुषों के शारीरिक-मानसिक व्यक्तित्व, बुद्धि, बल, प्रतिभा, योग्यता, कार्यशैली में अंतर रहा है। कोई एक महापुरुष, वैज्ञानिक, कलाकार इनमें सर्वथा दूसरे जैसा नहीं हो सकता, परंतु ये सभी महापुरुष अपने-अपने क्षेत्र की जिस ऊंचाई तक पहुंचे थे, वहां तक कोई भी मनुष्य पहुंच सकता है। हर मनुष्य अपने आप में अद्वितीय है, हर मनुष्य के अंदर महान शक्ति छिपी हुई है, परंतु वह अपनी इस महान गुण-शक्ति को नहीं जानता इसलिए वह दीन-हीन बना भटक रहा है और दुखी, पीड़ित, संतप्त बना हुआ है।

कहा जाता है जंगल में भेड़ चराते समय एक गड़रिये को एक नवजात सिंह-शावक मिला। उसे उठाकर वह अपने घर ले आया और अपनी भेड़ों के बीच रखकर पालने लगा। वह सिंह-शावक भेड़ों के बीच पलते हुए भेड़ों-जैसी क्रिया करने लगा और स्वयं अपने को भी एक भेड़ समझने लगा। वह भूल ही गया कि मैं भेड़ नहीं अपितु सिंह हूं। मेरी एक गर्जना से ये सारी भेड़ें भागकर पता नहीं कहां चली जायेंगी। ठीक यही दशा मनुष्य-जीव की है। यह मनुष्य स्वयं सिंह के समान अत्यंत बलवान है, परंतु अनादिकालीन स्वस्वरूप-अज्ञान, देहाध्यास, विषयासक्ति, गलत आदतों एवं मनोविकारों में पड़े रहने एवं उनके वशीभूत होने के कारण तथा भ्रम-कल्पनापूर्ण बातों को सुन-सुन कर यह अपने वास्तविक स्वरूप, शक्ति और महानता को भूल गया है और अपने को दीन-हीन मानकर बैठ गया है और जगह-जगह माथा पटक रहा है, रो-गिड़गिड़ाकर दूसरों की कृपा का मोहताज बना भटक रहा है। जबकि जिन जड़ पिण्डियों, देवी-देवताओं, ईश्वर-अल्लाह-गॉड आदि की कृपा का यह मोहताज बना है वे सब के सब इस मनुष्य-जीव की कृपा से ही पैदा हुए हैं और इसकी ही कृपा से पल-जी रहे हैं। जिस दिन यह अपना हाथ खींच लेगा सब भरभराकर गिर पड़ेंगे और उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—

जीव शीव सब प्रगटै, वै ठाकुर सब दास।

(बीजक, रमैनी-साखी 3)

अर्थात जीव की सत्ता-कल्पना से ही सभी देवी-देवता, ईश्वर पैदा हुए हैं। मनुष्य-जीव न होता तो इनकी कल्पना कौन करता और इनका स्वरूप कौन गढ़ता, परंतु मनुष्य जीव की अपनी स्वरूप-भूल एवं

विषयासक्ति के कारण मनुष्य जीव की कल्पना से सृजित देवी-देव, ईश्वर मालिक, जगन्नियंता, भोग-मोक्ष का दाता बन गये और मनुष्य स्वयं उनका दास-गुलाम बनकर उनकी सेवकाई करने लग गया।

कोई मालिक अपने मालिकपना को भूलकर सेवक की ही गुलामी-सेवकाई करने लग जाये तो उसकी जो अवदशा होगी वही अवदशा इस मनुष्य जीव की हो रही है। यह अपनी गरिमा-महिमा को भूलकर अत्यंत दीन-दुर्बल बन गया है। इसमें विवेक की महान शक्ति है। यह यदि निष्पक्ष होकर अपनी विवेक-शक्ति का थोड़ा भी प्रयोग करे तो सहज समझ सकता है कि जिनके आगे मैं गिड़गिड़ाकर भोग-मोक्ष मांग रहा हूं, जिनकी पूजा-उपासना-आराधना कर मैं तृप्त-शांत होना चाहता हूं वे सब तो मेरी ही कल्पना से सृजित हैं। परंतु यह अपनी विवेक-शक्ति का प्रयोग नहीं करता, बल्कि विवेक-शक्ति के प्रयोग करने को, निष्पक्ष चिंतन-विचार करने को धर्मद्रोह, ईश्वरद्रोह, ईशनिंदा और नास्तिकता समझता है, क्योंकि नाना धर्मग्रंथों में यही लिख दिया गया है। इसीलिए सद्गुरु कबीर को कहना पड़ा—

अपने गुण को अवगुण कहहू,
इहै अभाग जो तुम न विचारहू।

(बीजक, रमैनी 65)

अर्थात हे मनुष्य! तुम अपने विवेक-गुण को अवगुण कहते हो और कहते हो कि पूर्व के महापुरुषों ने, ऋषि-मुनियों ने धर्मग्रंथों में जो कुछ लिख दिया है वे सब सच हैं, उनकी बातों पर विचार करना धर्म-अपराध है। वे बातें आप्त पुरुषों द्वारा लिखी गयी हैं, उन पर विचार नहीं किया जा सकता, उन्हें तो हमें ज्यों का त्यों मान लेना है। कबीर साहेब कहते हैं कि जो तुम अपने विवेक-गुण का प्रयोग नहीं करते, धर्मग्रंथों में लिखी बातों पर विचार नहीं करते, बल्कि विचार करने को धर्मद्रोह, नास्तिकता समझते हो, यही तुम्हारा दुर्भाग्य है। इस दुर्भाग्य के कारण तुम अपनी महानशक्ति को, वास्तविकता को कभी नहीं समझ सकोगे।

याद रखो, जिन्हें तुम आप्त पुरुष कहते हो, ऋषि-मुनि, पीर-पैगंबर कहते हो वे भी तुम्हारे जैसे मनुष्य थे। वे भी तुम्हारे जैसे इसी धरती पर माता-पिता से जन्म लिये थे। अपने देश-काल-परिस्थिति के अनुसार तत्कालीन समाज को सही दिशा दिखाने के लिए जैसा उन्होंने उचित समझा वैसा कहा। तुम्हें उनकी ही आंखों से नहीं देखना है और उनकी ही बैसाखी पकड़कर नहीं चलना है किन्तु उनको आदर देते हुए, उनके प्रति श्रद्धा रखते हुए तुम्हें अपनी आंखों से देखना होगा और अपने कदमों पर खड़ा होना होगा, तभी तुम अपनी सत्ता-महत्ता, गरिमा-महिमा को समझ सकोगे।

याद रखो, तुमसे बड़ा तो क्या तुम्हारे बराबर भी इस दुनिया में कोई नहीं है। जिस पर तुम कृपा कर देते हो वही महान, सर्वसमर्थ, ईश्वर बन जाता है और पुजाने लग जाता है। जिसे तुम ईश्वर-खुदा कहते हो और जिसमें मिलकर तथा जिसे पाकर तुम कृतार्थ होना चाहते हो, यदि वे तुमसे अलग हैं तो वे भी तुम्हारे समान चेतन-जीव ही हैं। जो तुम हो वही वे भी हैं। इसके अलावा और कुछ भी नहीं। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

अल्लाह राम जियो तेरी नांई, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साईं।

अर्थात हे मनुष्य! जिसे तुम ईश्वर-अल्लाह कहते हो वे भी तुम्हारे समान जीव हैं, चेतन हैं। तुम जिस पर मेहर-कृपा कर देते हो वही साईं-ईश्वर-मालिक बन जाता है। देखो, तुमने मिट्टी-पत्थर पर कृपा की तो वही देवी-देवता, ईश्वर-परमात्मा बन गये और उनकी पूजा होने लगी, कागज पर कृपा कर उस पर कुछ छाप दिया तो वही देवी-देवता बन गये, तुमने पेड़-पहाड़, नदी, कोई स्थल पर कृपा की तो वही भवतारक बन गये और उनकी ही पूजा होने लग गयी। यहां तक तुमने गाय के गोबर पर कृपा की तो उसी के गौरी-गणेश बन गये। तुमने जिस-जिस पर कृपा की वही-वही देवी-देवता, भगवान आदि बनते चले गये, परंतु तुमने अपने पर कृपा नहीं की। तुमने सबको महत्त्व दिया, सबका महत्त्व समझा, परंतु अपना महत्त्व नहीं समझा। यही तुम्हारा दुर्भाग्य है और इसी दुर्भाग्य के कारण तुम आज तक भटक रहे हो और दुख पर दुख भोग रहे हो। कब

तक तुम इस प्रकार दीन-दुर्बल बनकर दुर्दशा में पड़े रहोगे। अब तो जागो!

याद रखो, मंदिर तुम्हीं बनाते हो। मंदिर ही नहीं सारे पूजा-स्थल तुम्हीं बनाते हो, तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा इनको बनाने वाला नहीं है। तुम्हीं वहां जाकर पूजा, उपासना, इबादत, अरदास करते हो। मूर्तियां बनाकर उनमें प्राण-प्रतिष्ठा तुम्हीं करते हो और तुम्हीं यह निर्धारित करते हो कि किस देवता या भगवान को कब किस चीज का भोग लगाना चाहिए और किस विधि से, किस मंत्र से किस देवता-भगवान की पूजा-स्तुति करना चाहिए। जरा शांत चित्त से सोचो, क्या तुम्हारे अतिरिक्त यह सब करने वाला कोई दूसरा है। यदि कोई दूसरा है तो वह तुम्हारे जैसा, तुम्हारा ही सजातीय भाई मनुष्य ही है, और कोई नहीं।

यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि धार्मिक पूजा-स्थल बनाना और वहां जाकर पूजा-उपासना, इबादत, अरदास करना गलत है। हर मनुष्य को अपने विश्वास और श्रद्धानुसार पूजा-उपासना करना चाहिए। यहां का भाव तो यह है कि मनुष्य जब तक अपने महत्त्व को नहीं समझेगा तब तक कोई उसका उद्धार नहीं कर सकता।

जैसे धरती सब कुछ का आधार है वैसे मनुष्य सारे ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, मत-मजहब, मंदिर-मस्जिद, देवी-देवता, ईश्वर आदि का आधार है। जहां मनुष्य है वहीं ये सब हैं और जहां मनुष्य नहीं है वहां ये सब कुछ नहीं हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि चांद में मनुष्य नहीं हैं तो वहां यह सब नहीं है। मनुष्य ही अपने आवश्यकतानुसार ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, मत-मजहब, देवी-देवता आदि का आविष्कार करता रहता है और जब जिसकी आवश्यकता नहीं समझता उसको छोड़ देता है।

किसी ईश्वर ने दुनिया में आकर अपने होने की घोषणा नहीं की है किन्तु मनुष्य ही ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करता है। ईश्वर सूत्रधार है और मनुष्य कठपुतली है, ईश्वर की इच्छा के विपरीत मनुष्य कुछ नहीं कर सकता—यह कहने वाला भी मनुष्य है। किसी ईश्वर ने ऐसा नहीं कहा है। परन्तु स्वरूप-भूल के कारण इस तथ्य को न समझ कर मनुष्य अपने से अलग एक ईश्वर की कल्पना कर उसके सामने रोता-गिड़गिड़ाता है।

मूलतः सभी जीव एक समान शुद्ध-बुद्ध ज्ञान-गुण सम्पन्न हैं, परन्तु उसके इस ज्ञान-गुण का उद्घाटन मनुष्य शरीर में ही होता है। इसीलिए मनुष्य शरीरधारी जीव ही सारे ज्ञान-विज्ञान का धारक-संवाहक तथा रक्षक है। इसीलिए इसे परमात्मा भी कहा जा सकता है। गीता में कहा गया है—

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन पुरुषः पर ।।

अर्थात—इस देह में रहने वाला श्रेष्ठ पुरुष (चेतन-जीव) ही सारे ज्ञान-विज्ञान का द्रष्टा, सबका धारक-प्रेरक, सबका भरण-पोषण करने वाला तथा कर्म फलों का भोक्ता है, इसलिए यही महान ईश्वर है और इसे ही परमात्मा कहा जाता है।

जो लोग अलग से ईश्वर मानते हैं घूम-फिरकर अंत में वे भी यही कहते हैं कि ईश्वर जीवों को उनके कर्मानुसार ही फल-भोग देता है। बिना कर्म किये ईश्वर किसी को कुछ नहीं दे सकता। इस न्याय से भी जीव बड़ा है, ईश्वर नहीं। इसीलिए मनुष्य को अपने भाग्य का विधाता और निर्माता कहा गया है। मनुष्य जैसा चाहे वैसा अपना जीवन और भाग्य बना सकता है। कोई इसको विवश नहीं कर सकता। इसीलिए महर्षि वेदव्यास कहते हैं—न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। मनुष्य से बढ़कर कोई नहीं है।

यही बात चंडीदास जी उच्च स्वर में कहते हैं—शुनो मानुष भाई सबार ऊपर मानुष सत्य तहार ऊपर नाई।

जब तक मनुष्य इस तथ्य को स्वीकार नहीं करेगा वह कभी अपना उद्धार नहीं कर सकता। जिसने भी अपना उद्धार किया इस तथ्य को स्वीकार कर ही किया। हर मानव को हर समय यह बात अपने दिल-दिमाग में बैठाकर रखना चाहिए—मानव तू है सबसे महान।

—धर्मेन्द्र दास

क्रोध से बचने के सरल उपाय

लेखक—श्री चन्द्रप्रभ जी महाराज

जीवन में कुछ पहलू ऐसे हैं जिन्हें जीवन में जोड़े रखने से लाभ कम किन्तु नुक़सान ज़्यादा है। आखिर उस लाभ को हम लाभ कहें भी कैसे जिसमें आवक से ज्यादा खर्च होता हो। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे कार्य या गतिविधि से अपने आपको बचाकर ही रखेगा, जिसमें उसे नुकसान का सामना करना पड़ता हो।

क्रोध जीवन का एक ऐसा पहलू है जिसके यदा-कदा लाभ नजर आने के बावजूद नुकसान ही ज़्यादा हैं। यह आत्मघातक शत्रु है। जीवन की शक्ति को जलाता है। लोग मद्यपान का निषेध करने पर जोर देते हैं। उनका यह दृष्टिकोण जीवन और स्वास्थ्य के प्रति लाभकारी है। मद्यपान तो हर कोई व्यक्ति नहीं करता, पर क्रोध तो इंसान की परछाईं की तरह उसके साथ लगा रहता है। जहां साल-छह महीने के बच्चे में भी क्रोध के चिन्ह देखने को मिलते हैं, वहीं मरण-शय्या पर पड़े इन्सान के चेहरे पर भी खीझ और चिड़चिड़ापन के रूप में क्रोध का स्वरूप नज़र आ जाता है। संसारी लोग गुस्सा करते हों, ऐसा ही नहीं है, संन्यासी लोग भी क्रोध की चपेट में आने से नहीं बच पाते हैं। संत की तो परिभाषा ही शांति होती है, पर अगर कोई संत क्रोध-आक्रोश में दिखाई दे तो आप उसे क्या कहेंगे? हम शायद उसे असंत तो नहीं कह पाएंगे। कहेंगे तो हम उसे संत ही, भले ही वह संत होने की कसौटी पर कमजोर क्यों न साबित हो जाये!

क्रोध तो हो अंतिम अस्त्र

मैंने भी जीवन में कभी क्रोध किया ही होगा। क्रोध आना स्वाभाविक है, इसलिए किसी के क्रोधित होने पर बुरा मानने की भी बात नहीं है। जैसे भूख लगना स्वाभाविक है और नींद आना भी, वैसे ही क्रोध भी है। क्रोध सदा बुरा ही हो, ऐसा नहीं है। अनियंत्रित/बेलगाम क्रोध ही आदमी के लिए आत्मघातक हथियार साबित होता है। आप क्रोध तभी करें, जब आपके पास क्रोध करने के अलावा अन्य कोई विकल्प न बच पाये। जो बात आप गुस्से में कहते हैं, वही बात अगर प्रेम से, मुस्कराकर कह दें तो इससे न तो आपकी शान घटेगी और न ही आपका रुतबा कम होगा। क्रोध तो अन्तिम हथियार है। यों समझें कि यह ब्रह्मास्त्र है। इसका प्रयोग तभी कीजिए जब आपके अन्य सभी हथियार बेकार साबित हो चुके हों।

मुझे शान्ति से प्रेम है। मैं शान्ति का पुजारी हूं, मैं स्वयं शान्त रहता हूं, शान्ति के वातावरण में जीना पसन्द करता हूं, अपने इर्द-गिर्द जुड़े हुए लोगों से भी शान्ति से जीने की विनती करता हूं। मेरी प्रेरणाएं शान्ति से जुड़ी हुई हैं। जीवन में उस शैली को अपनाने के लिए ही मेरी प्रेरणाएं रहती हैं जो इन्सान को उसका शान्ति का साम्राज्य प्रदान करे। वह समृद्धि और सम्बन्ध ही कैसे जो इन्सान की शान्ति को खण्डित कर दें, उस पर अशान्ति हावी हो जाये। अगर हम जीवन को ही प्रेम से न जी पायें तो जगत को प्रेम से जी पाएंगे, यह कम सम्भव है।

क्रोध और शान्ति दोनों विपरीत हैं। क्रोध आग है, तो शान्ति बाग है। क्रोध का चूल्हा बड़ा विचित्र है। यह पलभर में दहक उठता है और पल भर में ही बुझ जाता है। अगर ठीक वक्त पर इस पर काबू पा लिया जाये तो हम इसके दूरगामी दुष्परिणामों से बच सकते हैं। अगर आपने उठते हुए क्रोध का अनुसरण कर लिया, तो सावधान आपका क्षण भर का क्रोध आपका पूरा भविष्य बिगाड़ सकता है। वह आपके मधुर सम्बन्धों को तहस-नहस कर सकता है, आपकी शान्ति और खुशियों को आग लगा सकता है। दुनिया में जितना विनाश क्रोध के कारण हुआ, उतना शायद किसी परमाणु बम के कारण भी नहीं हुआ होगा। सच तो यह है कि परमाणु बम का विस्फोट भी क्रोध का ही परिणाम है।

क्रोध के सांड़ से रहिये सावधान

क्रोध बड़ा ग़ज़ब का अतिथि है। जो एक बार इसकी मेहमाननवाजी कर लेता है, यह फिर उसका पिण्ड नहीं छोड़ता। अन्य सारे मेहमान तो पहले सूचना देकर आते होंगे, खत लिखते होंगे, फोन करते होंगे, पर क्रोध ऐसा मेहमान है जो बगैर कोई पूर्व सूचना दिये घर में घुस आता है। गली के किसी कुत्ते को भी आपके घर में आने के लिए इजाजत की जरूरत पड़ती होगी, पर यह क्रोध तो बेशर्म है। यह बिना पूछे ही, बिना बुलाये मेहमान की तरह घुस आता है। आप इससे सावधान रहियेगा। यह उचक्का कहीं आपकी शान्ति के घर को चौपट न कर दे।

चाणक्य ने कभी क्रोध को यमराज कहा था। धार्मिक किताबों में यमराज तो मृत्यु के देवता को कहते होंगे, पर जीवन के शास्त्र में तो क्रोध साक्षात् यमराज ही है। वह यमराज तो काले भैंसे पर चढ़कर आता होगा, पर यह यमराज तो उपेक्षा और अपमान के गधे पर बैठकर आता है। यह यमराज उस यमराज से ज़्यादा ख़तरनाक है। वह यमराज तो जिन्दगी में एक दफा आता होगा, पर यह यमराज तो दिन में न जाने कितनी बार हमें अपनी दुलत्ती मार जाता होगा। आप उस यमराज से बचने के सौ-सौ इंतजाम करते होंगे, पर इस यमराज से बचने के लिए क्या हमने कोई प्रबन्ध किया है?

कहते हैं, सद्दाम हुसैन ने अपने बचाव के लिए सौ-सौ बंकर बनवाये। वह उन्हें जितना सुरक्षित बना सकता था, उतना उन्हें बनाया। न बम का उस पर असर हो सके, न उपग्रहों की विस्फोटक रेज उस तक पहुंच सके। इतना जबरदस्त बन्दोबस्त, पर यम से कोई नहीं बच पाया है। जो इस यमराज को जीत लेता है, उसे उस यमराज का मुंह नहीं देखना पड़ता।

गुस्से से बचिये। गुस्सा पागलपन है, और पागलपन कोई काम का नहीं होता। पागल कुत्ते को कोई पसन्द नहीं करता। जंगल में एक नाले के ऊपर ब्रिज बना हुआ था। ब्रिज इतना छोटा था कि उस पर से एक समय में एक ही व्यक्ति गुजर सकता था। या तो आने वाला निकलेगा या जाने वाला जायेगा। एक साथ आमने-सामने से दो नहीं। एक बार एक राजा उस ब्रिज से गुजरने लगा, तभी सामने से एक सांड़ चला आया। अब आप ही सोचें कि राजा को सांड़ की ओर आगे बढ़ना चाहिए कि वापस दस कदम पीछे लौट आना चाहिए? क्या राजा सांड़ को देखकर कहेगा कि मैं हूं राजा, तू भी आ जा। नहीं। राजा की समझदारी इसी में है कि राजा दस कदम पीछे हट जाये और सांड़ को गुजर जाने दे। क्रोध सांड़ ही है। इससे बचकर रहने में ही भलाई है, नहीं तो सींग खाने को तैयार रहें।

भला जब जीवन में शान्ति और सौम्यता की बहार लाई जा सकती है, तो फिर अशान्ति और कटुता के कांटों को क्यों ढोएं? जब प्रेम और सम्मान के फूल खिलाये जा सकते हैं, तो नफरत और उपेक्षा की चिनगारियां क्यों सुलगायी जायें? प्रेम और शान्ति से बढ़कर जीवन का न कोई धर्म है और न ही कोई उसूल। प्रेम और शान्ति ही जीवन का स्वर्ग है। सबके प्रति प्रेम और शान्ति ही जीवन का मधुवन है। जीवन को प्रेम की रसधार से जोड़िये, शान्ति और सम्मान के दीप जलाइए।

स्वर्ग-नरक हमारे भीतर

चीन में एक दार्शनिक संत हुए हैं—नानूसीची। वे अच्छे प्रतिष्ठित संत हुए हैं। एक दफा उनके पास चीन के सेनापति मिलने के लिए आये और कहने लगे, 'महात्मन्! मेरे प्रश्न का उत्तर दें कि स्वर्ग कहां है? नरक कहां है?' सेनापति योद्धा था इसलिए उसके पूछने का अंदाज भी फौजी जैसा ही था। उसकी भाषा से ऐसा लग रहा था कि मानो वह अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए नहीं वरन् लड़ने के लिए आया हो।

संत ने सोचा, 'बड़ा अजीब आदमी है यह। यदि कुछ जानना है तो पहले विनम्र होना जरूरी है।' संत को उत्तर तो देना ही था। वे बोले, 'क्या तुम सेनापति हो?' उसने कहा, 'क्या तुम्हें दिख नहीं रहा?' संत ने कहा, 'इसीलिए तो पूछ रहा हूं क्योंकि तुम्हारी सूरत तो एक

भिखारी जैसी दिखाई दे रही है।' यह सुनते ही सेनापति का चेहरा तमतमा उठा। उसने झल्लाते हुए कहा, 'क्या तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है कि मेरे हाथ में तलवार है न कि भीख मांगने का कटोरा?' संत ने मुस्कुराते हुए कहा, 'ओह! तो तुम तलवार भी रखते हो? इसमें धार भी है या नहीं?'

सेनापति पूरी तरह आवेश में आ चुका था। उसने झट से म्यान से तलवार खींच निकाली और कहा, 'ऐ संत! देख मेरी चमकती तलवार और उसकी पैनी धार।' संत ने शांत स्वर में कहा, 'क्या तुम इस तलवार से मेरा सिर काट सकते हो?' अब तो सेनापति अपना आपा खो बैठा। उसने चिल्लाकर कहा, 'क्या बकवास करते हो? क्या तुम्हें पता है कि तुम किससे बात कर रहे हो? कहीं ऐसा न हो कि सचमुच तुम्हारा सिर ही कलम हो जाये।'

संत ने एक गम्भीरता भरी सांस छोड़ी और मुस्कुराते हुए शांत भाव से कहा, 'सेनापति! तुम तो बिल्कुल ही बुरा मान गये। मैं तो मात्र तुम्हारे प्रश्न का जवाब दे रहा था। तुम यही जानना चाहते थे न कि नरक कहां है?' संत के जवाब से सेनापति का चौंकना स्वाभाविक था। वह सारी स्थिति समझ गया। उसे लगा कि संत ने उसे जीवन की समझ प्रदान कर दी कि नरक क्या है और कहां है? उसका गुस्सा शांत हो चुका था। वह संत के चरणों में झुक गया। संत नानूसीची ने दोनों हाथों से सेनापति को उठाते हुए कहा, 'सेनापति! यह है स्वर्ग, तुम्हारी इस शांति और विनम्रता में। इसी के साथ मैं तुम्हें तुम्हारे पूरे प्रश्न का उत्तर दे चुका हूं।'

क्या आप समझ चुके हैं कि स्वर्ग और नरक कहां हैं? वे कहीं बाहर नहीं हैं। वे तो हमारे ही भीतर हैं। हमारे भीतर ही वे निर्मित होते हैं।

मैं मानता हूं कि क्रोध की प्रकृति पर अंकुश लगाना कठिन है, पर दुनिया में ऐसा कौन-सा कठिन काम है, जिसे आदमी चाहे और न कर पाये? कमजोर मन और कमजोर संकल्प असफलता दिलाते हैं। मजबूत मन और मजबूत संकल्प कठिनाइयों के बावजूद सफलता का दरवाजा खोल दिया करते हैं। अगर आप अपने जीवन के संत होना चाहते हैं तो मैं कहूंगा कि आप यह मानें कि क्रोध जीवन की नकारात्मकता है और नकारात्मकता कभी भी रामसेतु का काम नहीं कर सकती। जीवन की सफलता के लिए पॉजिटिवनेस चाहिए। औरों को अपनाने का, औरों को प्रेम और सम्मान देने का ज़ज्बा चाहिए। जीवन में हर व्यक्ति जीत सकता है, जीत की बाज़ी मार सकता है, पर ऐसा करने के लिए कहीं-न-कहीं से तो इसकी शुरुआत करनी ही होगी।

कहते हैं, योगियों को भी गुस्सा आ जाता है। दुर्वासा तो इतना गुस्सा करते थे कि वे क्रोध के प्रतीक ही बन चुके थे। भला जब ऋषि-मुनि ही गुस्सा करते रहेंगे, तो आम आदमी की तो बिसात ही क्या है? मैं मानता हूं कि किसी भी व्यक्ति का संन्यास ले लेने मात्र से ही जीवन का सुधार नहीं हो जाता। जीवन को सुधारने के लिए संत बनना जरूरी नहीं है। जीवन और जगत के प्रति तो सकारात्मक नजरिया अपनाना जरूरी होता है।

पानी की लकीर बनें, पत्थर की नहीं

दुनिया में क्रोध की तीन तरह की प्रकृति और परिणति होती है। कुछ लोगों का गुस्सा पानी में खींची हुई लकीर की तरह होता है, यानी क्षण में उत्पन्न और क्षण भर में शांत। ऐसे लोग चिड़चिड़े भी होते हैं। उनका गुस्सा दिल को ठेस भी पहुंचाता है। पर ऐसा गुस्सा ज्यादा खतरनाक नहीं होता। वह तो तात्कालिक प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। अगर आप यह मानसिकता बना लें कि मैं किसी भी उग्र निमित्त के उपस्थित हो जाने पर हाथों-हाथ प्रतिक्रिया नहीं करूंगा तो आप चिनगारी की तरह पैदा होने वाले क्षणिक क्रोध से बच सकते हैं।

क्रोध का दूसरा रूप माटी पर खींची हुई लकीर या दरार की तरह होता है। यह जब होता है तो दो-चार घंटे या दो-चार दिन तक बना हुआ रहता है। यह टिकाऊ क्रोध है। यह टिक गया तो टिक गया। जिसमें भी इस तरह का क्रोध पैदा हो चुका है, आप उसके प्रति थोड़ा-

सा नरम या थोड़ा पोलाइटली पेश आइये। इससे अगला व्यक्ति जल्दी ठंडा पड़ सकता है। अगर आपने भी अपना मिजाज रूखा बना लिया तब तो गये काम से। दो-चार घंटे में ठंडा हो जाने वाला क्रोध दो-चार दिन में ठंडा हो जाये तो ग़नीमत है। क्रोध तो जब भी पैदा हो जाये तो जिस किसी भी तरीके से जितना जल्दी हो सके, उसे खत्म कर देने में ही फायदा है।

मुझसे एक व्यक्ति कह रहे थे कि मेरे पिता बड़े गुस्सैल हैं। मैंने कहा, 'तुम्हारी मेहरबानी से।' वह चौंका। उसने कहा, 'कैसे?' मैंने कहा, 'तुममें सहनशीलता है इसलिए वे गुस्सैल हैं। जिस दिन तुम भी गुस्सैल हो जाओगे उस दिन न तो तुम बचोगे, और न वे। अभी कम-से-कम एक तो बचा हुआ है। बुरा मत मानो भाई, घबराओ भी मत। किसी का गुस्सा तुम्हारा कुछ भी बुरा नहीं करता।' मैंने कहा न, यह आत्मघातक शत्रु है। यह गुस्सा करने वाले का ही बुरा करता है। तुम्हारा बुरा तो वह तब करेगा जब तुम उसे एक्सेप्ट कर लोगे। तुम अपने में सहज रहो। वह गुस्से में थोड़ी देर फूं-फां करके खुद ही ढीला पड़ जायेगा। गुस्सा कोई चिरस्थायी रहने वाला भाव नहीं है। वह किसी देवता की तरह अमर नहीं है। गुस्सा अनित्य है। यह खत्म होता ही है। किसी का अभी तो किसी का कभी।

मैंने कहा, 'कभी', पर कुछ लोगों के जीवन की कहानियां बताती हैं कि उनका गुस्सा उनके सात जन्म तक भी साथ निभाता रहता है। ऐसा गुस्सा पत्थर में खींची लकीर की तरह होता है। जैसे पत्थर में लगे दाग को मिटाना कठिन होता है, वैसे ही जिन्होंने अपने भीतर क्रोध और वैर की गांठ बांध ली है, उनके गुस्से को मिटाना कठिन है। उनका क्रोध पत्थर की लकीर ही बन चुका है। इस तरह की प्रकृति के लोग खुद ही पत्थर बन चुके हैं। पत्थर पत्थर से रगड़ेगा तो ठंडक कहां आयेगी? उनसे तो चिनगारियां ही पैदा होनी है। ऐसे लोग क्षम्य हैं। ऐसे लोग दया और करुणा के पात्र हैं। ईश्वर उन्हें उनके क्रोध की ग्रन्थि से मुक्त करे। वे लोग बोध को प्राप्त हों, अपने भीतर बैठे हुए सर्प और बिच्छू के भाव से मुक्त हों।

क्रोध यदि सात्विक हो...

सात्विक क्रोध तो किया जा सकता है, पर यह क्रोध केवल भलाई के लिए ही किया जाता है। अगर आपकी सन्तान बिगड़ती चली जाये, और आप शांत भाव से आसन लगाये उसे बिगड़ता देखते रहें, यह कतई उचित नहीं है। बिगड़ते बच्चे पर अंकुश लगाना आपका नैतिक फ़र्ज है। अगर आप ऐसा नहीं करते, तो आप अपनी सन्तान के प्रति होने वाले दायित्व से विमुख हो रहे हैं। बच्चों से प्यार अवश्य कीजिए, परन्तु उनके द्वारा अनुचित, अशोभनीय कार्य किये जाने पर डांट-डपट लगाने से भी मत चूकिये। यह डांट-डपट गुस्सा नहीं है, अनुशासन है। किसी अबला नारी पर होने वाले अत्याचार को देखकर मूक मत बने रहिये। यह गूंगापन निरपेक्षता नहीं बल्कि कायरता है।

क्रोध की भी आखिर एक सीमा है। अकरणीय क्रोध करणीय भी बन सकता है। पर सावधान! आपका क्रोध कहीं आपके घमण्ड का परिणाम न हो जाये। आपके अहं-भाव को लगने वाली चोट, आपके लिए राजसिक क्रोध का कारण बनती है। यही वह क्रोध होता है जो आदमी को घमण्डी बनाकर दूसरों की लगातार उपेक्षा करवाता रहता है। ऐसा क्रोधी व्यक्ति दूसरे को कुछ नहीं समझता और अपने आपको ही शहंशाह मानता है। अगर आपको लगता है कि आपके साथ क्रोध का कोई ऐसा स्वरूप जुड़ा हुआ है तो अपनी मनःस्थिति को समझिए। इस दुनिया में किसकी दादागीरी रही है। जो कभी स्वर्णदाता होता है, वही कभी जगत के आगे भिखारी बन जाता है। जैसे तुम्हारा अस्तित्व है, वैसे ही किसी और का भी अस्तित्व है। हम मालकियत में नहीं, सहचारिता में विश्वास करें। औरों के साथ कैसे कोऑपरेट किया जाये, इस बात को समझिये।

मान लीजिए आपने नौकर से पानी मांगा। उसे पानी लेकर पहुंचने में थोड़ी-सी देर लग गयी। आप इतने में ही झल्ला उठे। उसे बेबाक कह उठते हैं, 'नालायक, आलसी कहीं का।' नौकर पेट के आगे मजबूर है

इसलिए आपकी गालियों के जहर को भी पी जायेगा। पर देर होने का कारण भी वह जानता है। जिस गिलास में वह पानी लाने वाला था, सम्भव है, वह गिलास गंदा रहा हो या जूठा पड़ा रहा हो। वह उसे धो-मांजकर लाया होगा या और भी कोई कारण हो सकता है। हो सकता है, मालकिन ने उसे और कोई काम कह दिया हो। आप नौकर की इस दुविधा को समझिये कि अगर मालकिन के उस समय कहे हुए काम को न करे तो उसे मालकिन की डांट सुननी पड़ेगी और अगर करे तो पानी लेकर देर से पहुंचने के कारण आपकी डांट सुननी पड़ी। सच है, कटना आखिर खरबूजे को ही होगा। फिर चाहे चाकू खरबूजा में जाये या खरबूजा चाकू पर पड़े।

मैं आपके गुस्से का कारण भी समझ रहा हूं, पर आप जिस पर गुस्सा कर रहे हैं, उसके कारण को भी तो समझने की कोशिश कीजिए। आपकी थोड़ी-सी समझ, आपका थोड़ा-सा धैर्य नौकर के मन में आपके प्रति पैदा होने वाली नफरत को रोक सकता है। आप जिस पर गुस्सा कर रहे हैं अगर वह आपके बराबर का होगा तो वापस जवाब भी दे देगा। पर अगर वह छोटा होगा तो उसका अप्रकट गुस्सा बराबर वाले के गुस्से से ज़्यादा ख़तरनाक होगा। ध्यान रखिए, सहनशीलता की भी आखिर एक सीमा होती है। मज़बूरी को मज़बूरी मानने की भी एक सीमा होती है। कहीं ऐसा न हो कि आपका गुस्सा उसकी मज़बूरी को स्प्रिंग बना दे और उस स्प्रिंग से लौटने वाला पत्थर कहीं आपकी जान का कारण बन जाये। संभल सकते हैं तो संभलिए।

सावधान! गुस्सा मिटाएँ, खुशियाँ बचाएँ

गुस्से का वह रूप तो क्रोध का सबसे घटिया रूप है जहां हम दूसरों को नीचा दिखाने के लिए गुस्सा करते हैं। ईर्ष्या में फंसे हुए इन्सान इस निचले दर्जे का ही गुस्सा किया करते हैं। ईर्ष्या में पड़ा इन्सान हर समय मीन-मेख निकालता रहता है। वह अपने अपोजिटर को हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश में ही लगा रहता है। अगर आपने कहीं ऐसे दो लोगों को देखा हो जिनके बीच ईर्ष्या की कैंची चल पड़ी हो तो आपने भी पाया होगा वे अप्रकट दुश्मन एक-दूसरे का कितना अधिक अहित कर रहे हैं। ईर्ष्या क्रोध की ही बहिन है। जहां भाई पहुंचेगा, वहां बहिन अवश्य पहुंचेगी। अथवा इसे यों कह लीजिए कि जहां बहिन पहुंचेगी वहां भाई स्वतः ही पहुंच जायेगा। जहां शूर्पणखा पहुंचेगी वहां रावण को पहुंचना ही होगा। भला जब एक की नाक कटेगी तो दूसरे की बची कैसे रह जायेगी?

क्या आपने कभी किसी गुस्सैल व्यक्ति को देखा है? हालांकि गुस्सा तो आपने भी किया होगा। पर गुस्से में आपने अपना चेहरा तो देखा नहीं, इसलिए आपको पता नहीं है कि गुस्से में आदमी कैसा भूत-पलीत दिखाई देता है। आपने खुद ने भी नहीं देखा होगा और किसी और ने भी नहीं दिखाया होगा। गुस्से में किसी को आइना दिखाने का खतरा कौन मोल ले। मैंने कभी किसी को कह दिया था कि जब भी गुस्सा आ जाये तो मटके का दो गिलास ठंडा पानी पी लेना चाहिए। संयोग की बात उस दिन उसके पिता को गुस्सा आ गया था, सो उसने मेरी बात को तत्काल आजमाने का मानस बना लिया। उसने पापा को गुस्से में देखा, तो झट से ठंडे पानी का जग लेकर पापा के पास पहुंच गया और कहने लगा, 'पापा! ठंडा पानी पी लीजिए, गुस्सा ठंडा हो जायेगा।' आप समझ चुके होंगे कि इस बात को सुनकर उसके पिता की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी?

अरे भले आदमी, मैंने जो बात कही, वह तुम्हारे अपने लिए थी। तुम अपनी दवा को दूसरों को दोगे, तो फजीहत बढ़नी ही है। मैं तुम्हें तुम्हारे पापा की भी दवा दे सकता हूं और यह दवा है कि तुम झट से कह दो 'सॉरी'। इस बात को ज़्यादा अहमियत मत दो कि गलती किससे हुई? हो सकता है, गलती पापा से ही हो चुकी हो। पर जरा यह सोचो कि 'सॉरी' कहने में अपना क्या गया? तुम तो एक ही जागरूकता रखो कि गुस्सा चाहे तुम्हें पैदा हो या तुम्हारे पापा को, गुस्सा गलत है क्योंकि गुस्से का परिणाम दुःखदायी है। तुम तो ऐसा कुछ करो कि जिससे गुस्सा मिट सके। फिर चाहे वह गुस्सा तुम्हारा हो या तुम्हारे पापा का। गुस्से को जितना जल्दी मिटाया जायेगा, तुम अपनी खुशियों को उतना प्रतिशत बचाने में सफल हो सकोगे।

...क्रमशः

संत वचनामृत

लेखक—श्री कन्हैया सिंह बिशेन

1. साधकों को हर स्थिति में यह विचार करना चाहिए कि यह समय भी बीत जायेगा।

2. प्रसन्नता, आनन्द मानसिक स्वास्थ्य की औषधि है।

3. रोग कर्म-भोग है, जो भोगने पर मिटता है। चिकित्सा एक प्रकार का प्रायश्चित है अशुभ कर्म-भोग का।

4. चिन्ता जन्मजात नहीं होती है। यह एक आदत है जो धारणाओं में बदलाव लाने से दूर होती है।

5. प्रार्थना में तो यह मानना ठीक है कि सब कुछ प्रारब्ध-भाग्य पर निर्भर है, लेकिन काम हमेशा यह मानकर करना चाहिए कि सब कुछ मनुष्य पर निर्भर है।

6. तुम अच्छे तभी बन सकते हो, जब जितना जानते हो, उससे कम बोलो।

7. कष्ट और विपत्ति मनुष्य को शिक्षा देने वाले दो सर्वश्रेष्ठ गुण हैं।

8. बीते वक्त के लिए न रोयें क्योंकि वह जा चुका है। भविष्य की चिंता में भी न घुलें क्योंकि वह अभी आया ही नहीं है। जीवन को उसके वर्तमान में ही जियें।

9. कई लोगों को अपने ज्ञान का ऐसा अभिमान होता है कि उस अभिमान का भान नहीं कर पाते और अंततः वही अभिमान उनके पतन का कारण बनता है।

10. आप में कितनी भी योग्यता क्यों न हो, मन की एकाग्रता के बगैर आप कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकते।

11. अपने आपको स्वीकार करना सीख लें तो आपको किसी से किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। आप जैसे भी हैं, ठीक हैं।

12. खुशी पाने का पहला उपाय है कि बीती बातों पर ज्यादा सोच-विचार करने से परहेज करें।

13. समय पूर्व परिपक्वता अच्छी चीज नहीं होती। वह वृक्ष की हो या व्यक्ति की। उसकी कीमत चुकानी पड़ती है।

14. अगर आपका मन शांत, चित्त प्रसन्न और हृदय हर्षित है तो आप विश्वास कीजिए कि आपके सुखी होने में कोई सन्देह नहीं है।

15. हम प्रकृति से सबसे बड़ी चीज सीख सकते हैं कि वह कभी जल्दबाजी नहीं करती है। फिर भी उसके सभी काम समय पर पूरे हो जाते हैं।

16. गुस्से के लिए किसी और द्वारा सजा भले न दी जाये तो भी मनुष्य स्वयं ही अपने को सजा देता है, इसलिए अपने गुस्से को हमेशा नियन्त्रण में रखें।

17. तुम्हारे सज्जन होने की सबसे बड़ी परीक्षा यह है कि कोई तुम्हारी पीठ पीछे भी तुम्हें अच्छा कहे तो सुनने वाला भी उस पर विश्वास करे।

18. संसार हमेशा जरूरत के नियम से चलता है।

19. सर्दियों में जिस सूरज की सबको प्रतीक्षा रहती है, गर्मियों में सर्वत्र उसी का निरादर होता है।

20. जब घर में अतिथि हो तो चाहे अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिए।

21. कोई भी व्यक्ति कितना भी महान क्यों न हो, आंखें बन्द करके उसके पीछे नहीं चलना चाहिए।

22. शक करने की आदत किसी भी अच्छे रिश्ते को बरबाद कर देती है।

23. किसी भी बात को तभी मानो जब वह कसौटी पर खरी उतरे।

24. आप जितना ही कम बोलेंगे, आपकी आवाज उतनी ही ज्यादा सुनी जायेगी।

25. अगर आप सच बोलते हैं, तो आपको यह याद रखने की जरूरत नहीं पड़ती कि आपने कब, किससे और क्या कहा।

26. अपनी पीड़ा सह लेना और दूसरों को पीड़ा न पहुंचाना ही तपस्या का असली रूप है।

27. निर्धन दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनके पास धन नहीं होता, दूसरे वे जिनके पास कोई शुभचिंतक नहीं होता। इसमें दूसरे प्रकार के निर्धन ही असली निर्धन हैं।

28. कौन व्यक्ति अच्छा है और कौन बुरा है। इसके आकलन करने का सिर्फ एक ही आधार है। जो दूसरों को सुख पहुंचाये वह अच्छा है, जो दूसरों को दुख पहुंचाये वह खराब।

29. जो वस्तु हमें पसन्द है जरूरी नहीं कि वह मिल ही जाये। इसलिए जो मिले उसे ही पसन्द कर लेना चाहिए।

30. समझिये अगर भाग्य जैसी कोई चीज होती भी है तो उसे आपकी मेहनत ही निर्धारित करती है। आप जितनी मेहनत करते हैं, उतने ही भाग्यशाली बनते हैं।

31. अगर आप अपने गुस्से के एक क्षण में धैर्य बनाये रखें तो दुख के सौ दिनों से बच जाते हैं।

32. मनुष्य ज्ञान में जितना धुलता है, उतना ही कर्म के रंग में रंगता जाता है।

33. मृत्यु हमेशा समय की बात होती है, लेकिन मृत्यु के बाद भी लोगों के दिलों में जीवित रहना अच्छे कर्मों की बात है।

34. गति और प्रगति में बड़ा अन्तर है। कोल्हू के बैल दिन भर चलते हैं, लेकिन कोई प्रगति नहीं करते।

35. सांसारिक कार्य तो व्यक्ति की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी अपने आप संभाल लेते हैं। लेकिन व्यक्ति की मृत्यु के बाद आत्मकल्याण का कार्य उत्तराधिकारियों द्वारा सम्भव नहीं है।

36. इनाम लेने से ईमान चला जाता है।

37. किनारे खड़े होकर पानी को देखते-देखते आप समुद्र पार नहीं कर सकते हैं।

38. अगर आप अपनी आमदनी से कम में गुजर कर सकते हैं तो समझिये आपके पास पारस पत्थर है।

39. मानव का मानव होना ही उसकी जीत है। दानव होना उसकी हार और महामानव होना उसका चमत्कार है।

40. परोपकार करने के लिए न तो किसी वेबसाइट की जरूरत है और न ही कनेक्टिविटी की। आप जहां हैं वहीं से इसे प्रारम्भ कर सकते हैं।

41. जो मनुष्य सम्पत्ति का सदुपयोग नहीं कर सकता उसकी सम्पत्ति इतनी जल्दी नष्ट होगी कि पता ही नहीं लगेगा।

42. उदारता के समान कोई सद्गुण नहीं है और कृपणता के समान कोई अवगुण नहीं है।

43. नम्रता का कवच पहन लेने पर कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। कपास की रूई तलवार से नहीं कटती।

44. क्या करने से जाग्रत रहा जा सकता है। हर श्वास को अन्तिम श्वास समझना चाहिए।

45. गया धन वापस लाया जा सकता है, लेकिन बीता समय वापस नहीं लाया जा सकता। संसार की प्रत्येक वस्तु को घटाया-बढ़ाया जा सकता है लेकिन समय को नहीं।

46. जीव अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है और अकेले ही पुण्य का फल सुख और अकेले ही पाप का फल दुख भोगता है।

47. सुन्दरता, जवानी और भोगने की शक्ति क्रमशः घटती जाती है, रह जाती है तृष्णा जो अंत तक व्यक्ति को संतृप्त करती रहती है।

48. आप अपना भविष्य नहीं बदल सकते तो ना सही, अपनी आदतें बदल डालिए, फिर तो वे ही आपका भविष्य बदल देंगी। ❑

⌘ **अपशब्दों के प्रयोग का अर्थ है कि हममें सही शब्द इस्तेमाल करने की बुद्धि नहीं है।**

⌘ **ताकत की जरूरत तब पड़ती है जब किसी का कुछ बुरा करना हो, वरना दुनिया में सब कुछ पाने के लिए प्यार ही काफी है।**

—अज्ञात

व्यवहार वीथी

चरित्रवान बनें

नीति का एक शाश्वत कथन है—कृतेन हि भवेदार्यो न धनेन न विद्यया। अर्थात् मनुष्य चरित्र-आचरण से आर्य (श्रेष्ठ-महान) बनता है न कि धन और विद्या से। जीवन में धन और विद्या की महती आवश्यकता है इसे नकारा नहीं जा सकता, किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि धन और विद्या से किसी को पूर्ण आत्मिक शांति-संतोष नहीं मिल सकता। आत्मिक शांति-संतोष तो उज्ज्वल चरित्र-आचरण से ही मिल सकता है। आत्मिक-मानसिक शांति-संतोष की तो बात ही छोड़िए, धन और विद्या से किसी को स्थायी सामाजिक प्रतिष्ठा भी नहीं मिल सकती। धन और विद्या से जो सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है वह क्षणिक होती है। स्थायी सामाजिक प्रतिष्ठा उज्ज्वल चरित्र-आचरण से ही मिल सकती है।

चरित्र के बिना जीवन सुगंध एवं स्वाद-मिठास हीन फूल और फल के समान निस्सार है। जैसे दूध का सार मक्खन है वैसे ही चरित्र पूरे जीवन का सार है। प्रश्न होता है कि चरित्र क्या है? चरित्र किसे कहते हैं? प्रायः यौन-शुचिता को चरित्र कहा जाता है और जिस मनुष्य में यौन शुचिता नहीं होती उसे चरित्रहीन कहा जाता है। यौन शुचिता चरित्र का एक आवश्यक अंग तो है किन्तु यौन शुचिता मात्र को चरित्र नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः मन-वाणी-कर्म के समस्त शुभ कर्म-आचरण का समुच्चय चरित्र है। मन-वाणी-कर्म की शुचिता-पवित्रता ही चरित्र है। जिसके तन-मन-वचन के कर्म-आचरण मलिन हैं वह चरित्रहीन है और जिसके तन-मन-वचन के कर्म-व्यवहार उज्ज्वल-निर्मल हैं वह चरित्रवान है।

कोई भी मनुष्य बुद्धिमान, विद्वान, रूपवान, बलवान, धनवान बन सके या न बन सके, वह चरित्रवान तो बन ही सकता है। इसमें रुकावट बाहर कहीं नहीं है, जो रुकावटें हैं वह आंतरिक हैं, अपने गलत स्वभाव-संस्कार-आदतों की हैं। अपने गलत स्वभाव-संस्कार-आदतों को बदलने में हर आदमी पूर्ण सक्षम है। बस उसे दृढ़ निश्चय करने की आवश्यकता है। चरित्र को किसी एक कर्म-व्यवहार-आचरण में सीमित नहीं किया जा सकता, किन्तु जीवन के समस्त शुभ कर्मों का समुच्चय ही चरित्र है।

आज हर क्षेत्र में निर्माण और विकास की बात हो रही है, किन्तु चरित्र निर्माण और चरित्र विकास की बात कहीं सुनाई नहीं पड़ रही है। कहीं कोई चरित्र-निर्माण और विकास की बात कह भी रहा है तो उसकी बात नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह जा रही है। चरित्र-निर्माण और विकास की आवश्यकता हर कोई महसूस कर रहा है और यह भी महसूस कर रहा है कि चरित्र-निर्माण और विकास के अभाव में बाहर का सारा निर्माण और विकास निरर्थक है। परंतु दुर्भाग्य यह है कि हर कोई दूसरे को चरित्रवान देखना चाहता है, मैं चरित्रवान बनूं या मुझे चरित्रवान बनना है यह सोचने और करनेवाला कोई बिरला है।

चरित्रवान व्यक्ति के क्या-क्या लक्षण होते हैं, उसमें कौन-कौन से गुण होते हैं या किस-किस गुण से चरित्र बनता है, इसे थोड़े में नहीं बताया जा सकता। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि चरित्रवान व्यक्ति में निम्नांकित गुण अवश्य होते हैं—

1. चरित्रवान व्यक्ति में सच को सच और झूठ को झूठ कहने का साहस होता है। वह अच्छी तरह जानता है कि झूठ बोलने से तात्कालिक भौतिक लाभ भले हो जाये, परंतु इससे आंतरिक शांति और निर्भयता की हानि तुरंत हो जाती है और झूठ अंत तक कभी साथ नहीं देता, अंत तक साथ तो सच ही देता है। इसलिए किसी भौतिक स्वार्थ-लाभ के लिए वह कभी न झूठ बोलता है और न झूठ का सहारा लेता है। वह सदैव सच बोलता है और भौतिक स्वार्थ-लाभ की अपेक्षा सत्य को महत्त्व देता है।

2. चरित्रवान व्यक्ति ईमानदार होता है। वह प्रलोभन या भय के वश होकर सत्य-पथ से कभी विचलित नहीं होता। वह नाजायज तरीके से कभी कोई गलत लाभ

नहीं लेता। वह न तो कोई गलत काम करता है और न किसी के गलत काम का समर्थन करता है। वह भौतिक हानि और शारीरिक कष्ट, असुविधा सहन कर सत्य-पथ पर ही चलता चला जाता है। वह यह भी नहीं सोचता कि इस सत्य-पथ में कौन मेरा साथ दे रहा है और कौन नहीं दे रहा है।

3. चरित्रवान व्यक्ति भौतिक स्वार्थपूर्ति या बाहरी भौतिक सफलता के लिए कभी शार्टकट उपाय-रास्ता नहीं अपनाता, क्योंकि उसे यह ज्ञात रहता है कि शार्टकट से प्राप्त सफलता कभी स्थायी नहीं होती। साथ ही भौतिक सफलता को वह कभी महत्त्व नहीं देता। उसे अपने पुरुषार्थ और प्रारब्ध पर अटूट विश्वास रहता है। प्रारब्ध और पुरुषार्थ से जो मिल जाता है उसमें वह पूर्ण संतुष्ट रहता है।

4. चरित्रवान व्यक्ति कभी झूठा वायदा नहीं करता और न दूसरों को प्रलोभन देकर या भय दिखाकर उनसे अपना कोई काम करवाता है। वह वही कहता है जो वह कर सकता है। जिसे वह नहीं कर सकता या जो काम गलत है उसके लिए वह स्पष्ट इंकार कर देता है।

5. चरित्रवान व्यक्ति कर्तव्यनिष्ठ-कर्तव्यपरायण होता है। वह अपने आवश्यक कर्तव्य-कर्म करने में कभी टाल-मटोल नहीं करता और न आज का काम कल के लिए छोड़ता है। वह जिस काम को करता है उसे समर्पित भाव से पूजा समझकर करता है और पूरा करके ही छोड़ता है।

6. चरित्रवान व्यक्ति अपनी गलती को तुरंत स्वीकार कर लेता है। न तो वह उसे छिपाता है और न दूसरों के सिर मढ़ता है। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि गलती को न स्वीकारना और छिपाने का मतलब है वही गलती बार-बार करते जाना और गलती को स्वीकारने का मतलब है गलती को सुधारने की दिशा में आगे बढ़ना।

7. चरित्रवान व्यक्ति कभी गलत लोगों की संगति नहीं करता और न गलत लोगों से कभी मित्रता करता है। वह गलत संगति से सदैव दूर रहकर अच्छे लोगों की संगति करता है। जब उसे पता चलता है कि उसका अमुक साथी या मित्र गलत स्वभाव-आचरण वाला है या गलत कर्म कर रहा है तब वह उसे प्रेम-स्नेहपूर्वक समझा-बुझाकर सही रास्ते में लाने का प्रयास करता है। यदि वह अपना सुधार नहीं करता तो वह उसका हित चाहते हुए भी उसका साथ छोड़ देता है, लेकिन न तो वह उससे द्वेष या घृणा करता है और न उसकी निंदा-बुराई करता है।

8. चरित्रवान व्यक्ति किसी की निंदा-बुराई नहीं करता। अनावश्यक वह किसी की बुराइयों की चर्चा नहीं करता और न उसके बारे में सोचता ही है। वह किसी के बारे में ऐसी कोई बात नहीं कहता जो उसे दूसरों की दृष्टि में गिराती हो, हलका बनाती हो। इसके साथ ही वह न तो किसी की झूठी प्रशंसा करता है और न चापलूसी करता है। झूठी प्रशंसा एवं चापलूसी के मूल में कुछ पाने की, अपने मिथ्या स्वार्थपूर्ति की कामना रहती है। चरित्रवान व्यक्ति का अपना कोई भौतिक स्वार्थ है ही नहीं फिर वह क्या पाने के लिए किसी की झूठी प्रशंसा और चापलूसी करेगा।

9. चरित्रवान व्यक्ति अपनी प्रशंसा सुनकर न तो खुश होता है और न निंदा सुनकर नाखुश होता है। प्रशंसा करने वालों के प्रति न तो उसके मन में राग होता है और न निंदा करने वालों के प्रति द्वेष होता है। उसका मन राग-द्वेष से ऊपर उठा होता है। वह तो अपना काम करता चला जाता है। वह यह परवाह ही नहीं करता कि कौन उसकी निंदा कर रहा है और कौन प्रशंसा।

10. चरित्रवान व्यक्ति दूसरों की अच्छाइयों, सद्‌गुणों को तुरंत स्वीकार कर लेता है और लोगों से उनकी चर्चा-प्रशंसा भी करता है, परंतु अपनी अच्छाइयों का न तो वह अहंकार करता है और न प्रदर्शन। वह बाहर-भीतर से अत्यंत ठोस होता है किन्तु दिखावा नहीं करता। अपनी अच्छाइयों के लिए प्रशंसा पाने की चाहना उसके मन में नहीं होती। फलों से लदी डालियों के समान वह अत्यंत विनम्र होता है।

11. चरित्रवान व्यक्ति अपने से कम योग्यता वाले लोगों को कभी हीन, तुच्छ या छोटा नहीं समझता। वह उन्हें भी अपने समान मनुष्य समझता है। वह उन्हें आगे

बढ़ने, ऊपर उठने, उन्नति करने का भरपूर अवसर देता है। दूसरों की उन्नति देखकर उसके मन में ईर्ष्या नहीं होती, अपितु प्रसन्नता होती है।

12. चरित्रवान व्यक्ति किसी दिशा में उन्नति, अच्छाई, सफलता और लाभ का श्रेय स्वयं लेकर अवनति, बुराई, असफलता और हानि के लिए दूसरों को जिम्मेदार नहीं ठहराता। बल्कि उन्नति, अच्छाई, सफलता और लाभ का श्रेय दूसरों को देता है और असफलता-हानि के लिए अपनी जिम्मेदारी स्वीकार कर लेता है। वह न तो झूठा श्रेय लेता है और न दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण करता है।

13. चरित्रवान व्यक्ति धन, पद, प्रतिष्ठादि को महत्त्व नहीं देता किंतु कर्म-आचरण को महत्त्व देता है। इसलिए उसका हर कर्म-व्यवहार विश्वसनीय होता है। उसका अपने साथियों पर पूर्ण विश्वास रहता है। वह व्यर्थ दूसरों पर संदेह नहीं करता। वह स्वयं सावधान रहकर हर काम सावधानीपूर्वक करता है, परंतु उसका मन संदेहरहित रहता है। वह वस्तुओं से ज्यादा मनुष्यों को महत्त्व देता है।

14. चरित्रवान व्यक्ति किसी भी बात में निर्णय लेने में जल्दीबाजी नहीं करता। वह कोई भी निर्णय अच्छी तरह से सोच-विचार कर लेता है। साथ ही कोई भी निर्णय तात्कालिक लाभ को दृष्टि में रखकर नहीं लेता किंतु दीर्घ लाभ और भविष्य में आने वाले परिणाम को देखकर लेता है। एक बार निर्णय ले लेने के पश्चात उस पर अडिग रहता है और उसके अनुसार काम करता जाता है। लेकिन जब उसे यह पता चल जाता है कि उसका निर्णय गलत है तब उसे छोड़ने या बदलने में भी वह कोई हिचक नहीं करता, तत्काल उसे छोड़ या बदल देता है, देरी नहीं लगाता। लोग क्या कहेंगे इसकी वह परवाह नहीं करता।

15. किसी की गोपनीय बात वह दूसरों को नहीं बताता, किन्तु उसे अपने तक सीमित रखता है। उसका मन समुद्र के समान गहरा और गंभीर होता है। जैसे समुद्र दुनिया भर की सारी नदियों का पानी अपने में पचा लेता है वैसे वह किसी की गोपनीय बात अपने में पचा लेता है। इसलिए वह सबका विश्वसनीय हो जाता है।

16. चरित्रवान व्यक्ति दयालु स्वभाव का होता है। उसका मन करुणा से भरा होता है। किसी दीन-दुखी को देखकर वह उससे घृणा नहीं करता, किन्तु उसका मन किसी के दुख-दर्द को देख-सुनकर दया-करुणा से द्रवित हो जाता है। संभव हो तो वह उसके दुख-दर्द को दूर करने, सेवा करने का प्रयास करता है और यदि यह संभव न हो तो मन में उसके लिए कल्याण-कामना करता है। वह जान-बूझ कर तन-मन-वचन से किसी को किसी प्रकार दुख-तकलीफ-असुविधा नहीं पहुंचाता किन्तु जितना बन सकता है उसके सुख-सुविधा का ध्यान रखता है।

17. चरित्रवान व्यक्ति धैर्यवान, शांत, सहिष्णु, क्षमालु और उदार स्वभाव का होता है। वह किसी प्रकार की प्रतिकूलता-अपमान पाकर क्षुब्ध, उत्तेजित, क्रुद्ध नहीं होता। वह अपनी गलतियों के लिए दूसरों से क्षमा मांग लेता है और दूसरों की गलतियों के लिए उन्हें क्षमा कर देता है। उसके मन में किसी के लिए वैर-विरोध या बदला लेने की भावना नहीं होती। वह किसी की कही हुई गलत बात को याद नहीं रखता, इसलिए उसके मन में प्रतिक्रिया नहीं रहती। उसका मन प्रतिक्रियारहित सरल, निर्ग्रन्थ रहता है।

18. चरित्रवान व्यक्ति कभी अकेले में भी कोई ऐसा काम नहीं करता जो वह सबके बीच न कर सके। वस्तुतः मनुष्य के चरित्र का असली स्वरूप अकेले में प्रकट होता है। जहां कोई देख न रहा हो, कोई जान न रहा हो, जहां किसी प्रकार की कोई रोक-टोक न हो, जहां किये गये गलत काम का कोई दण्ड पाने का भय न हो उस समय मनुष्य जो करता है वही उसका असली चरित्र होता है। उसी पर उसके जीवन का उत्थान-पतन निर्भर होता है।

इस दुनिया में आकर किसने क्या पाया, क्या खोया यह महत्त्वपूर्ण नहीं है किन्तु महत्त्वपूर्ण है किसका चरित्र कैसा रहा है! चरित्र को अच्छा या गलत बनाना हर मनुष्य की अपनी इच्छा और समझ पर निर्भर है। हर

मनुष्य को यह याद रखना चाहिए कि बुद्धि, प्रतिभा, लगन, साहस और मेहनत के बल पर वह सफलता की चोटी पर पहुंच तो सकता है, परंतु इनके बल पर वह वहां टिका नहीं रह सकता। वहां तो वह अपने उज्ज्वल चरित्र के बल पर ही टिका रह सकता है। चरित्र में गड़बड़ी आते ही वह औंधे मुंह गहरी खाई में गिर जायेगा। इसलिए हर मनुष्य को चाहिए कि वह अपने चरित्र को सुंदर-उज्ज्वल बनाकर रखे। क्योंकि—

If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost, but if character is lost everything is lost.

अर्थात यदि धन खोया तो कुछ नहीं खोया, यदि स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोया, परंतु यदि चरित्र खो गया तो सब कुछ खो गया।

यदि यह कहा जाये कि चरित्र ही जीवन है तो कोई अत्युक्ति न होगी। इसलिए हर आदमी को प्रयत्नपूर्वक अपने चरित्र को सुन्दर-उज्ज्वल बनाकर रखना चाहिए। आदमी और कुछ अच्छा बना सके या न बना सके वह अपने चरित्र को अवश्य ही सुंदर, उज्ज्वल और अच्छा बना ही सकता है। हर आदमी को अपने दिल-दिमाग में यह अंकित कर लेना चाहिए कि पूजा चित्र की नहीं चरित्र की होती है

—धर्मेन्द्र दास

हमारी अपनी कहानी

लेखक—विवेक दास

भारत एक पुरानी सभ्यता और संस्कृति का देश है। यहां की सभ्यता बहुत पुरानी है। यहां की पुस्तक ऋग्वेद दुनिया की प्राचीनतम पुस्तक मानी जाती है। जिस समय पूरा संसार एक तरह से अज्ञान की नींद में सो रहा था यहां धर्म और दर्शन के क्षेत्र में अनेकानेक अनुसंधान हो रहे थे। यहां की सांस्कृतिक विरासत सदैव से सम्पन्न रही है। इस देश में अनेक जाति, मत, मजहब और सम्प्रदाय के लोग रहते आये हैं। आज भी अनेक मत, पंथ, सम्प्रदाय के लोग साथ रह रहे हैं। शायद ही दूसरे किसी देश में इस प्रकार की विविधता देखी जा सकती है, किन्तु इतना सब होने के पश्चात भी इस देश का साम्प्रदायिक सौहार्द्र स्तुत्य रहा है। इस देश में हजारों वर्षों तक बाहर से आक्रमण होते रहे हैं और वे यहां आकर यहां की संस्कृति को नेस्तनाबूद करने की चेष्टा किये किन्तु वे सफल नहीं हो पाये। बहुत सारी संस्कृतियां यहां आयीं और यहीं के होकर रह गयीं और उनको यहां की संस्कृति ने आत्मसात कर लिया।

बहुत से आक्रांता यहां आये। इस देश को लूटे और तहस-नहस करने की चेष्टा किये किन्तु यह देश पुनः-पुनः उठ खड़ा होता गया और आज भी अपनी सांस्कृतिक विरासत को बचाया हुआ है।

हम अपनी सभ्यता और संस्कृति की जरूर दुहाई देते हैं और पूरे विश्व में इसको ऊंचा दर्जा देते हैं। निश्चित है हमारी संस्कृति में बहुत सारी विशेषताएं हैं किन्तु बहुत सारी खामियां भी हैं जिनकी वजह से हम दूसरों से पिटते रहे हैं और आज भी पिटे जा रहे हैं। और हमारी स्थिति कायर और कापुरुष की भांति हो गयी है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

1. सम्प्रदायवाद—मनुष्य एक विचारशील प्राणी है और इस विचारशीलता की वजह से ही उसने इतना आध्यात्मिक और भौतिक विकास किया है। अब मनुष्य विचार करेगा तो एक दूसरे के विचार में थोड़ा-बहुत अन्तर होना भी स्वाभाविक है। एक ही विषय के बारे में यदि दस लोगों को विचार करने को कहा जाये तो जरूरी नहीं कि एक तरह के ही विचार आयें। अलग-अलग प्रकार के विचार आ सकते हैं और कुछ विचारों में तो एकदम भिन्नता भी हो सकती है। इसी विचार-शक्ति की भिन्नता की वजह से अनेक मत-पंथ और सम्प्रदायों का निर्माण हुआ। वेदों में भी आया है कि इस

पृथ्वी में अनेक धर्म और भाषा को मानने वाले रहते हैं। मत, पंथ और सम्प्रदाय का अलग-अलग होना बुरा नहीं है, जब तक मनुष्य रहेंगे मत, पंथ और सम्प्रदाय की भिन्नता रहेगी ही। समस्या तब उत्पन्न होती है जब मनुष्य अपने मत-मजहब को बड़ा और ऊंचा मानकर दूसरों को नीचा और तुच्छ बताकर अत्याचार करता है। उनकी उपेक्षा करता है। उनको भला-बुरा कहता है। आप जब अपने को श्रेष्ठ और ऊंचा मानकर दूसरों की उपेक्षा और निरादर करेंगे तो यही काम दूसरे भी करेंगे। परिणाम-स्वरूप संघर्ष का जन्म होगा। ऐसे ही इस देश में हुआ है। बाहर वाले तो कभी कभार आक्रमण करते रहे किन्तु हम लोग हमेशा आपस में लड़ते रहे हैं। कभी इष्ट को लेकर, कभी मान्यताओं को लेकर तो कभी स्वार्थ को लेकर और इसी का फायदा उठाकर बाहर वालों ने हम पर आक्रमण किया और शासन किया।

आज भी हममें एक दूसरे में तालमेल नहीं है। एक ही सम्प्रदाय, मत, मजहब में कई शाखाएं हो गयी हैं और वे आपसी वैमनस्यता में जूझ रही हैं। कोई तालमेल नहीं, कोई सामंजस्य नहीं। भले ही वे अपने ज्ञान, ध्यान की डींग हांकते हों और अपने को श्रेष्ठ और मुक्ति तथा स्वर्ग का ठेकेदार बताते हों किन्तु आपस के कलह और संघर्ष को दूर नहीं कर पाते हैं, आपस में सामंजस्य नहीं कर पाते हैं। हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, मुस्लिम, सभी इसकी गिरफ्त में हैं। हिन्दुओं में तो अनेक मत-पंथ हैं और यह एक प्रकार से सागर जैसा है जिनमें आपस में ही कटाकटी है, अपने-अपने में ही खींचातानी में लगे हैं। कभी एक मंच साझा करने तक को तैयार नहीं हैं। सब अपने को मुक्ति का ठेकेदार मान बैठे हैं किन्तु आपस में भाईचारापूर्वक रहने की भी अकल नहीं है। मैं बड़ा-तू छोटा; मैं बड़ा-तू छोटा। सब एक-दूसरे को छोटा और अपने को श्रेष्ठ बताने में लगे हैं। कुछ धर्मगुरु तो व्यर्थ ही दूसरों की निन्दा-चुगली और आलोचना करके अपने को बड़ा होने की डींग हांक रहे हैं, जबकि यह केवल उनकी मूर्खता और बेवकूफी के सिवा कुछ नहीं है। आप बड़े हो सकते हैं, अपने सुन्दर व्यवहार, सुन्दर आचरण और पवित्र एवं शांत मन के स्वामी बनने से, न कि दूसरों को भला-बुरा कहने से। जो व्यक्ति अपने जीवन, मन और कर्मों के प्रति सजग और सावधान होगा, वह व्यर्थ दूसरों की निंदा और आलोचना में पड़कर अपने समय-शक्ति को क्यों बरबाद करेगा।

हम आपस में ही सम्प्रदाय और मत-पंथ के नाम पर लड़ते रहे हैं। कभी एक होकर समन्वयपूर्वक रहने की कोशिश नहीं किये। जिसका फायदा औरों ने उठाया और हम पर शासन किया, हम पर अत्याचार किया, हमें लूटा।

2. जातिवाद—जाति के सम्बन्ध में जितनी कट्टरता इस देश में रही है और कहीं-कहीं आज भी है शायद कहीं नहीं होगी। यूं तो हम अपने को मनु की संतान कहते रहे हैं। एक ब्रह्म और ईश्वरीय एकता की चर्चा करते रहे हैं किन्तु व्यवहार बिलकुल अलग। जाति के नाम पर ऊंच-नीच और छुआछूत की भावना जड़ तक धंसी हुई है और आज की इक्कीसवीं सदी में भी नहीं निकल पा रही है। आये दिन जातिवाद के नाम पर जो बखेड़ा होता है, लोगों के साथ जो अत्याचार होता है वह किसी से छुपा नहीं है। यह हजारों सालों से होता आ रहा है। इसी का फायदा उठाकर दूसरे लोगों ने हम पर शासन किया और मनचाहा हमारा शोषण किया। आज भी राजनीतिक पार्टियां इसी जातिवाद के नाम पर जनता को बांटकर अपनी राजनैतिक रोटी सेंक रहे हैं। आज पढ़े-लिखे लोग भी जातिवाद के नाम पर अयोग्य और अनधिकारी व्यक्ति को अपना कीमती वोट देकर अपनी सत्ता उनको देते हैं। परिणामस्वरूप उनसे लूटे जाते हैं। आज के इन नेताओं को कुर्सी चाहिए, जैसे भी हो। जो पहले के आक्रांता लूटने का काम करते थे वैसा ही आज के अपने नेता कर रहे हैं। जगह-जगह जातिवाद के नाम पर, आरक्षण के नाम पर धरना, घेराबन्दी करवाया जाता है चाहे इससे जनता को कितना ही कष्ट और मुश्किल हो, इन लोगों को कोई फर्क नहीं पड़ता। बस इनको आगे आना है और सामान्य लोगों को गुमराह करके हाइलाईट होना है। जातिवाद के नाम पर हम बंटे रहे और दूसरे लोग हमारी इस मानसिकता का

फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा करते रहे। इस जाति के आधार पर ऊंच-नीच की भावना ने इस देश का इतना पतन किया है और कर रहा है कि क्या कहा जाये। हमारे ही भाइयों को बांटकर अलग कर दिया और दूसरे मत वाले जो बाहर से आये वे अपने में मिलाकर हमारा विरोधी बनाकर खड़ा कर दिये। यदि जातिवाद का आडम्बर नहीं होता तो न कभी हमारे अपने ही भाई उपेक्षित होते और न ही वे हमारे विरोधी बनकर खड़े होते।

3.अन्धविश्वास—देवी-देव, भूत-प्रेत, लगन-मुहूर्त, शकुन-अपशकुन, तंत्र-मंत्र, जिन्द-चुड़ैल, ईश्वर-परमात्मा आदि के बारे में इतना अन्धविश्वास समाज में फैला है कि आज के इस आधुनिक युग में भी समाज उबर नहीं पा रहा है।

अन्धविश्वास और भ्रम की बातें पुराने-पुराने ग्रन्थों में भी हैं। सामान्य जनमानस में तो यह फैला ही है। इस अन्धविश्वास के चलते समाज उलझा और परेशान है और आश्चर्य है आज के इस शिक्षा और विज्ञान के युग में भी समाज में कुछ चतुर और होशियार किस्म के लोग जनता का शोषण कर रहे हैं। इस ढंग से भ्रम की बात ये लोग समाज में रखते हैं कि सामान्य जनता उसमें पड़ ही जाती है, और एक बार पड़ गयी तो फिर उनके चंगुल से निकल पाना मुश्किल होता है।

कबीर आश्रम सूरत की बात है । एक पण्डित जी चोवा-चंदन लगाये धोती-कुर्ता पहने आये। मैं बैठा था अभिवादन किये तो मैंने प्रत्याभिवादन किया, उनको बैठाया। थोड़ी चर्चा हुई। इसी दरम्यान मैंने उनके हाथों की उंगलियों को देखा, वे बहुत सारी अंगूठियां पहने थे। मैंने कहा पंडित जी, आप इतनी सारी अंगूठियां क्यों पहने हुए हैं ? तो उन्होंने कहा—आकाश में नौ ग्रह हैं और नौ ग्रह के लिए ये नौ अंगूठियां हैं। मैंने कहा—पंडित जी, आकाश में करोड़ों किलोमीटर की दूरी पर ग्रह हैं तो क्या वे लगते हैं? उन्होंने कहा—"हां, लगते हैं।" मैंने अपने हाथ दिखाते हुए कहा कि आपको ग्रह लगते हैं तो हमें क्यों नहीं लगते और हमें नहीं लगते हैं तो आपको क्यों लगते हैं। सूर्य की गर्मी खुले आकाश में जाने से सबको लगती है। ऐसा तो नहीं कि आपको लगे मुझे न लगे। क्या अंगूठी पहन लेने मात्र से सूर्य का ताप कम हो जायेगा। गर्मी नहीं लगेगी। वे कुछ नहीं बोले, उठकर चल दिये। मैंने तो एक घटना को उद्धृत किया है किन्तु समाज में अनेक सारे अन्धविश्वास हैं जिनसे समाज के लोग परेशान हैं।

लग्न और मुहूर्त की बात भी बहुत चलती हैं। अमुक मुहूर्त में ही लग्न होनी चाहिए नहीं तो अशुभ हो जायेगा। शुभ काम अमुक मुहूर्त में ही हो। समय की अनुकूलता और व्यवस्था के अनुसार समय देखकर काम करना अलग बात है किन्तु पोथी-पत्रानुसार अमुक मुहूर्त में ही काम हो, लग्न आदि हो, एक अन्धविश्वास है। वैसे तो प्रायः हिन्दू लोग मुहूर्त देखकर ही शादी-विवाह करते हैं तो क्या सभी शादी सफल हो जाती है और अन्य लोग बिना मुहूर्त के शादी-विवाह करते हैं तो उनकी सब टूट जाती है। ऐसा तो नहीं होता है।

रामायण की घटना के अनुसार राम-सीता के विवाह का लग्न शोधने वाले तीन मूर्धन्य विद्वान वसिष्ठ, विश्वामित्र और सतानन्द थे। लेकिन क्या हुआ! क्या उनका वैवाहिक जीवन सफल कहा जा सकता है? इसीलिए सद्गुरु कबीर साहेब ने चुटकी ली है—

गुरु वशिष्ठ मिली लगन सुधायो, सूर्य मंत्र एक दीन्हा।
जो सीता रघुनाथ बिवाही, पल एक संच न कीन्हा।

(बीजक)

इसी भ्रम की वजह से जब कोई बाहर से आक्रमणकारी हमारे देश पर चढ़ाई करते थे तो यहां बहादुरी और वीरता होने के बाद भी हार होती थी। अब बाहर से आक्रमणकारी राज्य की ओर बढ़ रहा है और यहां के राजा को पता भी चल गया किन्तु पंडित लोग कह देते थे कि अभी मुहूर्त नहीं है। सही मुहूर्त पर ही युद्ध करने में जीत हो सकेगी, और उधर दुश्मन अपनी सुविधानुसार जगह देखकर आक्रमण की तैयारी करता और हमें सम्हलने का मौका ही नहीं देता और आक्रमण कर देता, हमारी हार हो जाती। वे लोग बिना मुहूर्त के

ही युद्ध करते और जीतते रहे, हम पर शासन करते रहे और हम लोग मुहूर्त के चक्कर में अपने आपको खोते रहे, गुलाम बनते रहे। और आज भी वही रवैया समाज में है।

आज ईश्वर-परमात्मा के नाम पर भी लड़ाई होती रहती है। मेरा ईश्वर बड़ा तुम्हारा छोटा। मेरे अनुसार जो ईश्वर को नहीं मानता वह नास्तिक और काफिर है। यह सब क्या है? यदि यह माना जाये कि कोई ईश्वर है जो जगत को बनाने और चलाने वाला है तो वह एक ही होगा क्योंकि जगत एक है। फिर लड़ाई क्यों? इसलिए उस समय ही कबीर साहेब को कहना पड़ा "भाई रे दुई जगदीश कहां ते आया, कहु कौने बौराया।" हे भाई, दो जगदीश कहां से आ गया है, तुमको किसने पागल कर दिया है।

हम जितना ही ईश्वर-परमात्मा और देवी-देव के चक्कर में पड़ते हैं उतना ही मानसिक रूप से कमजोर होते जाते हैं और हर बात में ऊपर ताकते रहते हैं और अपनी मान्यता के विपरीत कुछ होता है तो विरोधी और हिंसक बन जाते हैं। वास्तव में ऐसी स्थिति में न तो वास्तविकता को समझा जा सकता है और न ही मानवता को।

4. स्वार्थपरता—वैसे तो सबका अपना स्वार्थ है और सभी अपना स्वार्थ पूरा करते हैं। व्यक्ति अपना स्वार्थ पूरा होने के पश्चात ही औरों के बारे में सोच पाता है किन्तु स्वार्थ तब घातक हो जाता है जब हम दूसरों की हानि करके अपना स्वार्थ साधने लग जाते हैं। आप इतिहास उठाकर देख लीजिए किस प्रकार लोग अपने तुच्छ स्वार्थ में पड़कर देश और समाज की हानि किये हैं। अपने स्वार्थ के लिए आक्रांताओं से मिल जाते थे और अपने ही भाई और पड़ोसी की हत्या करवाते थे। फिर बाद में उनको खुद मुंह की खानी पड़ती थी। आक्रांता भी सोचते थे जो अपनों का नहीं हो सका हमारा क्या होगा! सिकन्दर के साथ तक्षशिला नरेश आंभ्री का मिलना हो चाहे मुहम्मद गोरी के साथ जयचन्द का मिलना हो और चाहे अंग्रेजों के साथ स्वार्थी पिट्ठुओं का मिलना हो ये सब अपने थोड़े स्वार्थ के चक्कर में देश और समाज का बहुत बड़ा नुकसान किये। और आज भी ऐसे लोग समाज के हर क्षेत्र में हैं और जनता को लूट रहे हैं। कुछ भी हो अपना स्वार्थ पूरा होना चाहिए। किन्तु समझ लें इतिहास गवाह है ऐसे लोग न चैन से जी पाये और न ही चैन से मर पाये। आज जो भी स्वार्थ के लिए दूसरों के हक का हनन करते हैं, हिंसा-हत्या फैलाते हैं उनकी भी वही दशा होनी है। क्योंकि कहावत है "भगवान के घर देर है अंधेर नहीं।" वास्तव में भगवान या ईश्वर यह प्रकृति है और वह परिणाम तो देती ही है।

हमारी संस्कृति और सभ्यता पुरानी है जिसका हमें गर्व होना चाहिए किन्तु जो इनमें दूषण आ गये हैं और जिनकी वजह से हम दुखी और संतापित हुए हैं, दूसरों द्वारा भी लूटे और पिटे गये उन सबको दूर करके पुनः अपनी गरिमा को स्थापित कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में गुरुदेव जी का यह पद अत्यंत प्रासंगिक है—

विश्व के सब संत जन को वन्दना साभार हो।
तिमिर सारे नाश हो पथ प्रेम का निर्धार हो॥
देश जाति प्रदेश भाषा भेद से ऊपर उठें।
प्राणियों में हो दया और मनुषता को प्यार हो॥
साम्प्रदायिक विष घृणा और द्वेष का निरुवार हो।
विश्व के शाश्वत नियम की समझ शुचि साकार हो॥
भेद मत में हो भले ही सत्य में नहीं भेद है।
भावना को जीतकर हम सत्य के सहकार हों॥
प्रेम में सोयें व जागें प्रेम में जीयें मरें।
प्रेम पथ निर्मोह का निजरूप बोध विचार हो॥

हम सभी के साथ प्रेम और समता पूर्वक व्यवहार करें। सब अपनी मान्यता और विचारों के लिए स्वतंत्र हैं किन्तु मानवता और इन्सानियत की दृष्टि से सबके साथ सुन्दर व्यवहार होना चाहिए। ऊंच-नीच की भावना से ऊपर उठकर अंधविश्वास और स्वार्थ की जंजीरों को तोड़कर हम सुन्दर और स्वस्थ समाज की रचना कर सकते हैं। हम स्वयं सुखी रहकर औरों के सुख में सहयोग दे सकते हैं।

❑

लघुकथा

दायित्व बोध

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

सच्चाई यही थी कि दादा को आपरेशन के बाद नयी जिन्दगी मिली थी। वैसे उनका बच जाना किसी चमत्कार से कम नहीं था। आपरेशन से सप्ताह भर पहले उन्हें हार्ट-अटैक आया था और उन्हें सांस लेने में तकलीफ हो रही थी। यह दूसरा अटैक था। वे किसी तरह अस्पताल पहुंच गये। सौभाग्य से आपरेशन सफल रहा और उन्हें आई.सी.यू. में भेज दिया गया। यहां उनकी देखभाल की जिम्मेदारी एक युवक को मिली थी। वह युवक दिन भर उनकी सेवा में लगा रहता।

दूसरे दिन उनकी तबियत में काफी सुधार आया था। मगर उन्हें नींद बहुत आ रही थी। शायद दादा का ज्यादा सोना उनके लिए घातक था। उस युवक ने बाहर बैठी दादी को बुला लाया ताकि वे दादा के साथ बात करें और वे सो न सकें। लेकिन दादा बात करते-करते फिर सो जाते। आखिर उस युवक ने दादी को बाहर भेज दिया और खुद बतियाने लगा। उसने दादा और उनके परिवार के विषय में विस्तार से पूछना शुरू किया। दादा जी एक-एक कर सब का जवाब देते रहे। फिर उसने स्वयं बताया कि मेरा नाम बिबिल है। दादा जी को उसका नाम कुछ अजीब-सा लगा तो उन्होंने पूछा, "कहां के रहने वाले हो?" बिबिल ने बताया, "केरल"।

उसी समय कुछ दूर पर एक महिला मरीज की देखभाल में जुटी उसकी पत्नी भी वहां आ गयी। बिबिल ने फिर बताया, "यह मेरी वाइफ है। हम दोनों यहीं काम करते हैं।" दादा मुस्कुराकर बोले, "बहुत बढ़िया है। मरीजों की सेवा करना तो परोपकार का काम है।" उसकी पत्नी की ओर देखकर बोले, "बिबिल बहुत अच्छा है।" दादा की बात सुन उसकी पत्नी खुश हो गयी थी।

कुछ देर तक बतियाने के बाद दादा फिर सोने लगे। बिबिल ने उन्हें जगाते हुए कहा, "दादा जी, आप खाना खा कर एक से तीन बजे के बीच सो सकते हैं। अभी मैं आपको सोने नहीं दूंगा। बार-बार कह रहा हूं, आप मान नहीं रहे हैं। अब और सोयेंगे न, तो मैं आपको चांटा मारूंगा।"

चांटा की बात सुनते ही दादा की नींद भाग गयी। उन्हें खूब जोरों की हंसी आयी, पर मुस्कुराकर रह गये। बोले, "अच्छा भाई, अब नहीं सोऊंगा।" वे बिबिल का अपने दायित्व के प्रति निष्ठा देख बहुत प्रसन्न थे। कुछ दिन बाद उन्हें प्राइवेट रूम में शिफ्ट कर दिया गया और बिबिल का साथ छूट गया। छः दिन बाद उन्हें अस्पताल से भी छुट्टी मिल गयी। बिबिल का चेहरा उन्हें याद नहीं रहा, पर वे उसका नाम नहीं भूल पाये। आज भी घर में बिबिल की चांटा वाली बात को सुनाकर खूब आनंदित होते हैं और कहते हैं, "यह बिबिल की अपने दायित्व के प्रति निष्ठा की पराकाष्ठा है। इन सबके सहयोग से ही मैं बच गया और बहुत जल्दी काफी स्वस्थ हो गया।"

❑

कीमत बढ़ाइये

1. **मुस्कान**—हमारे चेहरे की कीमत बढ़ाती है।
2. **प्रेम**—हमारे हृदय की कीमत बढ़ाता है।
3. **सच्चाई**—हमारे विचारों की कीमत बढ़ाती है।
4. **आदर**—हमारे संस्कारों की कीमत बढ़ाता है।
5. **ईमानदारी**—हमारे व्यवहार की कीमत बढ़ाता है।
6. **मधुरता**—हमारी वाणी की कीमत बढ़ाती है।
7. **ज्ञान**—हमारे अभिप्राय की कीमत बढ़ाता है।
8. **संयम**—हमारे चरित्र की कीमत बढ़ाता है।
9. **मित्र और परिवार**—हमारे जीवन की कीमत बढ़ाते हैं।

—इंटरनेट से

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

एक संत एक जगह गये। वहीं थोड़ा अस्वस्थ हो गये और दो दिन में शरीर छूट गया। यह शरीर की स्थिति है। बोधवान सब समय शरीर को मन से छोड़े रहता है। वस्तुतः यह है ही नहीं। यह तो एक धुआं का धरहरा है जो काल की हवा से बिखर जाने वाला है। जिसे स्वरूपबोध हो गया है, उसे चाहिए कि वह सबकी आशा-वासना छोड़कर और मौन होकर आत्ममनन में मन लगावे। सारा संबंध क्षणिक है। इसलिए किसी दृश्य में अपने मन को न बांधे। मैं असंग हूं, संसार से सर्वथा परे हूं, जड़ दृश्य मेरे में है ही नहीं। अतएव सदैव असंगता में ही रमना बुद्धिमानी है।

* * *

कुछ रहता नहीं है। न अच्छी घटना रहती है और न बुरी घटना, किंतु दोनों के परिणाम रहते हैं। अच्छी घटना के सुखद परिणाम और बुरी घटना के दुखद परिणाम। इसलिए अपना मन जिससे सब तरफ से मुक्त हो, वह काम करना चाहिए। शारीरिक-वास क्षणिक है। आत्मा की असंगता, केवल अनंत है। अतएव साधक को चाहिए कि क्षणिक का मोह त्यागकर अनंत में मन लगावे।

* * *

परिचितों में अनुकूल के प्रति राग होता है और प्रतिकूल के प्रति द्वेष होता है। यही भव-बंधन है, और सारा परिचित कुछ दिनों में झूठ हो जाता है। जब देह छूट जाती है, तब सारा परिचित उसके लिए सदैव के लिए विस्मृति के गर्त में डूब जाता है। यह परिचित की पोलपट्टी और व्यर्थता है जिसमें हम उलझते हैं। अतएव सारे परिचित को सब समय व्यर्थ समझना चाहिए। वर्तमान में यथावत व्यवहार तो करना पड़ेगा, परंतु व्यवहार का मोह संवरण करना चाहिए। अंतिम स्थिति के लिए व्यवहार को कम करना चाहिए। हम अपने को जड़-दृश्य से छुड़ायें, यही हमारी परम साधना होगी। शरीर की मृत्यु परम सत्यता है इस तथ्य को हरक्षण समझने वाला कहीं मोहग्रस्त नहीं होता।

* * *

सारा संसार एक प्रवाह है। मिट्टी, पानी, आग तथा हवा के कणों का प्रवाह निरंतर चलता है। इन्हीं के कणों से नाना दृश्यमान वस्तुएं बनती तथा मिटती रहती हैं। उन्हीं वस्तुओं में से यह अपना माना गया शरीर भी है। सारा दृश्यमान सारहीन एक प्रवाह है। आत्मविवेक न होने से इन क्षणिक दृश्यमान वस्तुओं में हम अहंता-ममता मानते हैं और दुख भोगते हैं। साधक इन दृश्यमान जड़-दृश्यों से अपने को सर्वथा पृथक समझे और इन्हें उदासीन होकर देखे। मनुष्य दृश्यों से पूर्ण उदास होकर ही अपने अमृतपद में स्थित हो सकता है। दृश्य का मोह द्रष्टा का पतन है। हमें पूर्ण जाग्रत होना चाहिए। हरक्षण दृश्यों से उदासीन और अपने शुद्ध स्वरूप में आसीन।

* * *

वाणी और मन का मौन परम समाधि है। अहंकार का पूर्ण विलय हो जाने पर यह उच्चतम अवस्था आती है। जब तक हम दूसरों को अपना विरोधी मानते रहेंगे, जब तक दुखते रहेंगे, तब तक हमारे अहंकार का बीज माना जायेगा। अहंकार का पूर्ण विलय हो जाने पर दुख नहीं रहता। दुख न रहने पर मन में द्वंद्व नहीं रहता। ऐसा प्रशांत मन ही निर्विकल्प होता है जो सच्चा मौन है। आत्मबोध के बाद पूर्ण मौन ही मंजिल पर पहुंच जाना है। मौन का अर्थ है मन संकल्प-रहित, वितर्क-रहित, उद्वेग-शून्य एवं पूर्ण शांत हो जाना। ऐसा साधक सदैव आनंदकंद है। इस दशा में पहुंचे हुए साधक का शरीर कहीं भी बिखर जाये, वह सदैव आत्मतख्त पर विराजमान है।

* * *

जितने लोग मिलने आते हैं उनमें अधिकतम लोग नर हो या नारी कुछ-न-कुछ साधना में मन लगाने वाले रहते हैं। उनकी शिकायत यही रहती है कि मन बड़ा चंचल रहता है। यह वश में नहीं होता। वस्तुतः मन के नीचे उसकी जड़ में जब तक संसार से कुछ पाने की इच्छा रहती है और उसका किसी अंश का अहंकार रहता है तब तक मन शांत नहीं हो सकता। सदाचारमय जीवन रहने से बहुत कुछ मन ठीक रहता है। परंतु उसका पूर्ण समाधि में डूब जाना और अन्य समय शांत रहना तब होगा जब सारी जागतिक अहंता-ममता और कामनाएं समाप्त हो जाये। यही परम सुख, परमानंद एवं शाश्वत शांति है।

* * *

जब हम आज से एक, दो, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ वर्ष पूर्व की घटनाएं, चर्चाएं, प्राणी-पदार्थों पर ध्यान देते हैं, तो वे आज कुछ नहीं हैं। आज की घटनाएं, प्राणी-पदार्थ भी कल शून्य हो जायेंगे। इसलिए क्षीण संस्कार के साधक के लिए स्वरूपस्थिति की निरंतरता और अधिकतम मौन ही उत्तम है। सारी वार्ताएं मौन में बदल जाती हैं और सारी घटनाएं शून्य में बदल जाती हैं। जिन वर्तमान के प्राणी-पदार्थों और परिस्थितियों में मनुष्य उद्वेगित होता रहता है, उनका आगे कोई मूल्य नहीं रह जाता है। सब समय वाक्य संयम और शांति ही सुख का, निर्वाण का, मोक्ष का, अद्वैत का, कैवल्य का, पारख का, परमधाम स्वरूपस्थिति का मार्ग है।

* * *

जो कुछ जानने में आता है वह ज्ञेय है उसी का कालांतर में ध्यान होता है, अतएव ज्ञेय ही ध्येय हो जाता है और यह सब अनात्म है, जड़ है। अपना स्वरूप तो ज्ञेय-ध्येय का द्रष्टा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। मुझे स्वयं शांत हो जाना चाहिए। इसके अलावा कुछ पाना नहीं है। पाना ही धोखा है। चाहे सारे संसार का राज-काज मिल जाये, उसका छूट जाना पक्की बात है। तब मिलने की कामना कितनी थोथी है, यह सहज समझा जा सकता है। आत्मतृप्त, आत्मकाम, आत्माराम होकर रहना ही जीवन का सच्चा आनंद है। यह क्षण-क्षण बदलने वाला शरीर और संसार विश्वसनीय नहीं है। अचानक ही शरीर हमारा संबंध त्याग देगा। अतएव हम इससे सब समय उदासीन होकर स्थिर आत्मस्थ रहें।

* * *

सतत सावधानी से मन को जड़दृश्य के स्मरण से ऊपर रखकर आत्मचिंतन में जोड़ना चाहिए। मेरे चारों तरफ जो कुछ बिखरा है, वह सब क्षण-क्षण क्षीण हो रहा है। वह हमारे साथ रहने वाला नहीं है। वर्तमान में लगता है कि यह अपना शरीर है। यह सदैव हमारे साथ रहेगा। ये संगी-साथी लोग जो अनुकूल हैं, हमारे साथ सदा रहेंगे। ये मकान, धन-दौलत सब मेरे साथ बने रहेंगे। परंतु याद रखो, यह सब का सब आकाश-कुसुम की भांति एक दिन शून्य हो जायेगा। तुम्हारे साथ तुम्हारे अलावा कोई और कुछ नहीं रहेगा। इस सत्यता को निरंतर याद रखकर अपने मन को आत्म-चिंतन में बांधो। स्वरूप-स्मरण स्वरूपस्थिति के अभेद्य किला में प्रतिष्ठित होने का द्वार है।

* * *

सब समय साक्षीभाव में रहो। मन की वृत्ति बाहर न बहने दो। द्वैत में भय होता है। जब हम दृश्य-स्मरण करते हैं, तब द्वैत में पड़ जाते हैं। जब साक्षीभाव रखकर दृश्यों से उदासीन रहते हैं, तब द्वैत निरस्त रहता है। और जब संकल्प शून्य हो जाता है, तब दृश्य एकदम लुप्त हो जाता है। यह उच्चतम स्थिति है। आज-कल में देह छोड़ देना है, फिर द्वैत का सर्वथा अभाव हो जायेगा। हम देह में रहते हुए अद्वैत का अनुभव करें। जड़-दृश्य मुझसे भिन्न है। उसका संबंध मन से है। मन को शांत कर देने पर जड़-दृश्य मेरे सामने नहीं रहता है, फिर मैं अद्वैत, केवल, असंग, निराधार शुद्ध चेतन, शेष, पारखस्वरूप, शिवस्वरूप मंगलमय। ❑

सुख की तलाश

लेखक—भूपेन्द्र दास

एक बच्चा अपने घर में माता-पिता के प्रेम-प्यार में पल-बढ़ रहा था। कभी किसी प्रकार के दुख का क्षण उसके जीवन में नहीं आया था। वह अपने को बहुत खुशनसीब मानता था परन्तु समय तो किसी के वश में नहीं है। इस परिवर्तनशील संसार में कब क्या नहीं हो सकता। एक दिन किसी बात को लेकर पिता से विवाद हो गया। पिता ने एक थप्पड़ लगा दिया जिससे वह लड़का बहुत दुखी हुआ। जिस घर, मकान, परिवार में वह सुख का अनुभव करता था वह मकान अब उसे दुखों से घिरा हुआ प्रतीत होने लगा। कई दिनों तक वह इसी चिंता में डुबा रहा कि आखिर सुख का कहीं कोई स्रोत तो होगा? जहां किसी प्रकार से कोई दुख न हो। इस विचार ने उसे गृह-त्याग के लिए विवश कर दिया।

एक दिन दोपहर सबको विश्राम की स्थिति में देखकर सुख की तलाश में वह घर से चुपके से निकल पड़ा। रास्ते में जो भी मिलता उससे वह पूछता—असली सुख कहां है? इस प्रश्न के उत्तर लोग विभिन्न प्रकार से देते। कोई कहता सब कुछ त्याग कर कठोर तपस्या करो भगवान को पाने के लिए। जब भगवान प्रसन्न होंगे तब वे अपने धाम में ले चलेंगे वहां दुख है ही नहीं, केवल सुख ही सुख मिलेंगे। कोई कहता खूब मेहनत करके अधिक धन कमाओ, जब धन बढ़ जायेगा तो सुखी हो जाओगे। कोई कहता कुछ वर्षों में तुम बड़े हो जाओगे तो तुम्हारी शादी होगी तब पत्नी से मिलकर तुम सुखी हो जाओगे। जो भी मिलता अलग-अलग उपाय बताता।

यह खोज सिर्फ उस बच्चे की ही नहीं है, हम सबकी यही बात है। सभी मनुष्य सुख की खोज में पागल बने भटक रहे हैं, पर आज तक वह मिला नहीं। क्या संसार में सबके सब दुखी हैं? संसार में कोई सुखी है ही नहीं ऐसी बात नहीं है। इस दुनिया में ऐसे बहुत-से लोग हैं जो दुख से पार हैं। प्रश्न उठता है कि वे कौन से लोग हैं जो सभी दुखों से पार हो जाते हैं और सदा सुखी जीवन जीते हैं। वह कौन-सा उपाय है जिससे मनुष्य सभी दुखों से छुटकारा पाता है और सच्चा सुख पाता है?

जन्म से लेकर बुढ़ापा तक जब तक हमारी जिन्दगी का फूल खिला हुआ है हम एक ही चीज ढूंढते रहते हैं उसका नाम है "सुख"। बचपन में सुख की तलाश थी, जवानी में भी सुख की तलाश जारी थी। बुढ़ापा में भी सुख की प्यास बुझी नहीं है। जरजर अवस्था में भी सुख की आशा है कि शायद आखिरी में ही सुख मिल जाये। सुख खोजते-खोजते जीवन का सूरज अस्ताचल की ओर चला जाता है। सुख ढूंढते-ढूंढते जिन्दगी की शाम आ गयी लेकिन सुख मिला नहीं। क्या संसार में सुख है ही नहीं? क्या संसार में केवल दुख ही दुख है? गीता में कहा गया है– "दुखालयमशाश्वतम्" संसार दुखों का घर है। गरीब दुखी है, अमीर दुखी है, पुरुष-स्त्री, बच्चे-बूढ़े, जवान सभी दुखी हैं। गृहस्थ दुखी हैं तो विरक्त भी दुखी हैं। 'योगी-जंगम ते अति दुखिया, तापस के दुख दूना।[1] सद्गुरु कबीर साहेब जी कहते हैं—जो तपस्वी हैं वे दुगुना दुखी हैं। संन्यासी तो हो गये पर पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ, कायाकष्ट में, अज्ञान में ही जीवन बीत रहा है। साधु होकर भी बीड़ी-सिगरेट पी रहे हैं। तम्बाकू खा रहे हैं। जो नहीं करना चाहिए ऐसा उल्टा-पल्टा काम कर रहे हैं।

जो सच्चे संत होते हैं वे दुखों की सीमा पार करके सुख के सागर में पहुंच जाते हैं। अर्जुन ने श्री कृष्ण से पूछा है—भगवन! सुखी कौन हैं? श्री कृष्ण महराज ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए गीता में कहा है—

---

1. बीजक शब्द-91।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
काम-क्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥[1]

श्री कृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन! जो मनुष्य इस शरीर के नाश होने के पहले अर्थात मृत्यु के पूर्व, मौत हो जाये इससे पहले इस शरीर में उत्पन्न होने वाले काम और क्रोध के वेग को, लोभ, मोह, अहंकार के वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, सारे विकारों को जीत लेता है वह योगी है और वही सुखी इंसान है।

इस शरीर के अन्दर कभी क्रोध का आवेग उत्पन्न होता है तो कभी काम का। वास्तव में ये दोनों अलग-अलग नहीं बल्कि जुड़वां भाई हैं। काम बड़ा भाई है तो क्रोध छोटा। विषयों में आसक्ति होने से काम उत्पन्न होता है। काम सफल हो गया तो लोभ बढ़ता है और कामना में भंग पड़ने पर, काम के विफल होने पर क्रोध बढ़ता है इसलिए इसे नरक का द्वार भी कहा गया है। जो मनुष्य कामवेग को ब्रह्मचर्य के द्वारा सहन कर लेता है और क्रोध को क्षमा का गुण विकसित करके जीत लेता है वह एक दिन निश्चित ही सफलता की सीढ़ी पर पहुंच जाता है और सही अर्थों में सुखी हो जाता है।

यह मनुष्य (जीव) ही अर्जुन है। सबके भीतर जो अवगुणों का दल है वह कौरव दल है। जो अहंकार है वह दुर्योधन का रूप है। हमेशा अहंकार ही आदमी को परेशान करता है। दया, क्षमा, संतोष, विवेक, विचार ये सद्गुणों का समुच्चय ही पांच पांडव हैं। पांचों पांडवों की ताकत से ही सैकड़ों कौरवों रूपी अवगुणों से विजय होती है। इसके लिए श्रीकृष्ण जैसा सारथी चाहिए। अपना जीवन ही रथ है। श्रीकृष्ण के समान सद्गुरु हैं। इन्द्रियां ही घोड़े हैं। संयम की लगाम है। सद्गुरु इस लगाम को पकड़े हुए हैं। नियम की राह है। अनुशासन की चाबुक है। सद्गुरु का ज्ञान ही संकेत है। सभी मनुष्य जीव जीवन रूपी रथ में बैठे हुए हैं। सामने अहंकार रूपी दुर्योधन अपने दल को लेकर खड़ा हुआ है। सद्गुरु रूपी कृष्ण के इशारे से जब आप ज्ञान का बाण छोड़ते हैं तो अभिमान रूपी दुर्योधन की मृत्यु होती है। अवगुण रूपी कौरवों का विनाश होता है तब जिन्दगी की महाभारत में विजय होती है और हमें शांति की प्राप्ति होती है।

जिन्दगी एक महाभारत है। इस मानस संग्राम में सद्गुणों और अवगुणों का महासंग्राम निरंतर चल रहा है। कभी अवगुणों से सद्गुण पराजित होने लगते हैं तो कभी सद्गुणों से अवगुण हमेशा के लिए पराजित हो जाते हैं। जिस व्यक्ति के अंदर सद्गुणों की प्रबलता होती है उसके अन्दर अवगुण हमेशा के लिए विदा हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति वास्तव में महापुरुषों की श्रेणी में आते हैं। वास्तव में वही परम सुख को प्राप्त करते हैं। पारख सिद्धान्त के परम वैराग्यवान सद्गुरु श्री विशाल साहेब जी ने अपनी विशाल रचना "भवयान" में मानस संग्राम का बहुत ही सुन्दर, मार्मिक, प्रेरणाप्रद चित्रण किया है जो सबके लिए कल्याणकारी एवं मनन करने योग्य है।

सद्गुरु कबीर साहेब से किसी ने पूछा गुरुदेव! इस उलझन भरी दुनिया में दुख कैसे समाप्त होंगे और सुखों की प्राप्ति कैसे होगी? सद्गुरु कबीर साहेब अपनी मस्ती में जीने वाले परम वैराग्यवान संत थे। उनके हृदय में सदैव ज्ञान की आग धधकती रहती थी। उन्होंने तुरंत बहुत ही सटीक और सरल उत्तर दिया "करहु विचार जो सब दुख जाई"[2] इंसान के जीवन में अगर विचार आ जाये, विचार जीवन का शृंगार बन जाये अर्थात हर काम विचारपूर्ण हो—बोलें तो विचार कर, चलें विचार कर, भोजन बनायें विचार कर, भोजन ग्रहण करें विचार कर, रिश्ते बनायें विचार कर, रिश्तों को कभी तोड़ना पड़े तो भी विचार कर, शादी करें विचार कर, भक्ति करें विचार कर, गुरु ढूंढें विचार कर, गुरुदीक्षा लें विचार कर, इस प्रकार हर काम विचारपूर्वक हो तो सारे दुखों का एक साथ निष्कासन हो जायेगा और जीवन में ज्ञान का प्रकाश फैल जायेगा

1. गीता, अध्याय-5, श्लोक-23।

2. बीजक, रमैनी 23।

और मनुष्य सब प्रकार से सुखी हो जायेगा। विचार के अभाव में इंसान दुखी है।

महाभारत कथा के अनुसार जब द्रोपदी की साड़ी खींची जा रही थी, दुःशासन साड़ी खींच रहा था उस समय द्रोपदी विचार करके दुखी हो रही है कि अगर मैंने "अंधे के अंधे ही होते हैं" यह न कहा होता तो आज मेरा इतना अपमान न होता। इस अपमान का दुख भोगना भी नहीं पड़ता। लेकिन द्रोपदी के विचार करने में अब बहुत देर हो चुकी है। युधिष्ठिर विचार कर रहे हैं यदि मैं जुआ न खेलता तो द्रोपदी को न हारता, भाइयों को न हारता, राज्य तथा स्वयं को भी न हारता और आज यह दुर्दशा न होती लेकिन युधिष्ठिर को भी विचार करने में अब देर हो गयी थी। अगर बरसात के मौसम में कोई किसान अपने खेत में गेहूं बोये तो गेहूं की फसल कैसे होगी। नब्बे वर्ष की अवस्था में कोई विवाह करने को सोचे तो उसका जीवन सुखद कैसे होगा? महाभारत युद्ध में जब आधे से ज्यादा कौरव दल का विनाश हो गया तब दुर्योधन मन-ही-मन विचार करते हैं कि अगर पांच गांव पांडवों को दे दिया होता तो मुझे अपने भाइयों से हाथ धोना न पड़ता। पूरे राज्य का राजा तो मैं ही होता परन्तु विचार करने में अब काफी देरी हो चुकी है। सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे जो काम करने से पहले विचार कर लेते हैं उन्हें परिणाम में दुख उठाना नहीं पड़ता। किन्तु जो लोग काम करने के पश्चात जब दुख पाते हैं तब विचार करते हैं उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है। विचार दोनों करते हैं। परन्तु उनका विचार करना सार्थक होता है जो काम करने से पहले विचार लेते हैं। इसीलिए कहा गया—

बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपनो जग में होत हंसाय॥

जितनी-जितनी विचारों की परिपक्वता बढ़ती जाती है उतना ही लोभ, मोह, तृष्णा क्षीण होते चले जाते हैं। बाहर के माने हुए प्राणी और पदार्थों में हमें असली आनन्द या सुख कैसे प्राप्त हो सकते हैं। असली सुख मन की तरंगों की आत्यंतिक निवृत्ति में है। ठंड के दिनों में सूर्य की गर्मी मन को भाती है तो ग्रीष्म के आते-आते वही आग बनकर तपाती है। ग्रीष्मकालीन कूलर-पंखों की ठंडी हवा का शीत ऋतु में शरीर से स्पर्श होते ही शरीर में चुभन-सी महसूस होने लगती है।

"करहु विचार जो सब दुख जाई"—हमें इस पर गंभीरता से विचार करना होगा कि सुख कहां है और कहां नहीं है। न शरीर को तपाने में सुख है न अधिक धन-संग्रह में, न पद-प्रतिष्ठा पाने में सुख है। सुख है विचारपूर्वक अपने अंदर के दोषों-विकारों का त्याग कर शांत हो जाने में। आदमी बन में, पर्वत की गुफाओं में, मंदिर-मस्जिद, गिरजा, ठाकुरद्वारों में सुख-शांति खोजता फिरता है पर जब कहीं नहीं मिलता तब थक-हार कर गुरु की खोज करता है। जब सच्चे सद्गुरु मिल जाते हैं तब वे बताते हैं कि सच्चा सुख तो तुम्हारे भीतर है। गुरु का निर्देश पाकर जब वह अपने अंदर झांकता है तब वह सच्चा सुख पाता है। सब दुख और सब सुख क्या है? 'सब दुख है बंधन, मन की पीड़ा, अशांति, उद्वेग आदि और सब सुख है मन की शान्ति, मोक्ष, मन का शांत हो जाना। जो व्यक्ति काम, क्रोध जैसे वेगों को सहन करने में समर्थ हो जाता है वह हमेशा के लिए शाश्वत शांति पा जाता है। जो उनसे कभी नहीं छूटती। इस विषय पर परम पूज्य सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी की अमर पंक्तियां स्मरण करने योग्य हैं—

सुख ढूंढ़ रहे तुम बन में, गिरि गह्वर के कन्दर में।
पर नहीं पता तू पाया, वह है तेरे अन्दर में॥
तेरे ही अंतस्तल में, सुख सागर लहराता है।
पर तू विपन्न हो करके, दर-दर ठोकर खाता है॥
घर में बन में मंदर में, चौराहों बाजारों में।
सेठों के गोदामों में, नृप के कोषागारों में॥
पूरब में व पश्चिम में, नभ के तारों-तारों में।
सुख शान्ति नहीं पाओगे, मंदिर ठाकुरद्वारों में॥
जब मन बिषयों से मुड़कर, अपने में आ जायेगा।
सब चंचलता को तजकर, स्थिरता को पायेगा।
तब सुख का स्रोत खुलेगा, जो है अनन्त अपने में।
इसको पाकर फिर मन को, नहिं होगा दुख सपने में॥

हमारा अधिकार किसमें है?

हर आदमी को गंभीरतापूर्वक यह सोचना चाहिए कि हम स्ववश किस बात में हैं। किस बात में हमारा अधिकार है। शरीर को सदैव जवान-स्वस्थ बनाये रखने में, घर-परिवार के सदस्यों को या अन्य लोगों को अपने अधिकार में रखने में, उनसे अपनी बात मनवाने में, जब जैसी हमारी इच्छा हो वैसा काम करने और करवाने में हम स्ववश नहीं हैं। इनमें कोई भी स्ववश नहीं है। संसार में सब समय निरन्तर परिवर्तन की धारा चल रही है। वहां हम चाहें कि हमारा शरीर, हमारे साथियों का शरीर, हमें जो चीजें मिली हुई हैं वे सारी चीजें, पद, अधिकार, शासन सभी एकरस बने रहें तो यह संभव ही नहीं है। बाहरी बातों में कोई भी आदमी पूर्ण स्ववश नहीं है किन्तु आत्मकल्याण का काम करने में, भवबंधनों को काटकर पूर्ण स्ववशता और आत्मशान्ति पाने में हर आदमी स्ववश है।

आत्मकल्याण का काम ऐसा काम है जिसमें बाहरी भौतिक उपलब्धियों की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसके लिए बहुत धन, बड़ा परिवार, बड़ी लोकप्रतिष्ठा, बड़ी जाति, स्वामित्व, शासन-अधिकार चाहिए, ऐसी कोई बात नहीं है। बिना किसी बाहरी ऐश्वर्य के आत्मकल्याण का काम होता है। छोटा-बड़ा कोई भी भौतिक काम करना हो, या कुछ लोक-सेवा का काम करना हो तो धन चाहिए। लेकिन आत्मकल्याण के लिए धन की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए बड़ी विद्या चाहिए ऐसी बात भी नहीं है।

बहुत-से लोग कहते हैं कि क्या करें हमारे पास ज्यादा बुद्धि नहीं है, हम ज़्यादा पढ़े-लिखे नहीं हैं, हमें लोग जानते नहीं हैं, हमारे पास पद-प्रतिष्ठा नहीं हैं, ज़्यादा धन नहीं है, बड़ा परिवार नहीं है, हम कल्याण का काम कैसे कर सकते हैं? बड़ी बुद्धि हो, खूब विद्वता हो, बड़ी प्रतिष्ठा हो तब कल्याण का काम होगा, ऐसा नहीं है।

चाहे बन्धन का काम हो चाहे मोक्ष का काम इसके लिए विद्या, बुद्धि, धन, प्रतिष्ठा आदि की आवश्यकता नहीं है। कोई यह नहीं कहता है कि क्या करें साहेब, हम पढ़े-लिखे नहीं हैं, अनपढ़ आदमी हैं, हमारे पास बड़ी बुद्धि नहीं है इसलिए हमें गाली देना नहीं आता है, हमें क्रोध करना और झगड़ा करना नहीं आता है। लड़ाई करने के लिए, गाली-गलौज करने के लिए, मारपीट करने के लिए, झूठ बोलने के लिए, छल-छद्म करने के लिए, दुष्कर्म करने के लिए आदमी शिकायत नहीं करता। जो जहां हैं अपने-अपने ढंग से सब कर लेते हैं। लेकिन कल्याण का काम करने के लिए बहाना बनाता है। हमारे पास यह नहीं है वह नहीं है और सारा बहाना केवल एक झुठाई है, एक छलावा है। बहाना बना करके हम अपने को ही धोखा देते हैं।

जो आदमी असाध्य बीमारी से जकड़ा हुआ हो, बिस्तर पर ही पड़ा हुआ हो, ऐसा आदमी जो उठ-बैठ नहीं सकता, अपनी नित्य क्रिया का काम कर नहीं सकता, अपने हाथ से भोजन भी नहीं कर सकता, ऐसा अशक्त आदमी भी कल्याण का काम कर सकता है। क्योंकि कल्याण के काम में मुख्य मन की आवश्यकता होती है। मन से मोह का, वासना का त्याग कर दे। बस, इतना ज्ञान हो कि मैं शरीर नहीं हूं, शरीर में लगे हुए तत्त्व नहीं हूं, मैं शरीर और शरीर के इन्द्रियों का संचालक हूं, जीव हूं, शुद्ध-बुद्ध हूं यह बोध हो, इसके पश्चात मन से मोह का त्याग हो तो अशक्त आदमी भी भले सेवा का काम नहीं कर सकेगा लेकिन कल्याण का काम वह भी कर सकता है। परन्तु यही काम नहीं होता। अशक्त को तो छोड़िये बलवान स्वस्थ लोग भी मोह के त्याग का काम नहीं करते। जो कुछ करते हैं मोह बढ़ाने का काम करते हैं।

तो हम स्ववश किसमें हैं? एक ही बात में हमारी स्ववशता है आत्मकल्याण का काम करने में। इसके अलावा किसी बात में हमारी स्ववशता नहीं है। आपका ही लड़का है लेकिन आप अपने लड़के से हर समय जबरदस्ती हर बात नहीं मनवा सकते। उसका मन होगा मानेगा, नहीं होगा नहीं मानेगा। मन होगा काम करेगा

मन नहीं होगा नहीं करेगा। भौतिक क्षेत्र में भरपूर परिश्रम करने के बाद भी कई बार सफलता नहीं मिलती है क्योंकि भौतिक क्षेत्र की सफलता के लिए बहुत सारी चीजें चाहिए। लोग सहायक नहीं हैं, प्रतिकूल हैं, विरोधी हैं, समय अनुकूल नहीं हुआ, ऋतु अनुकूल नहीं हुई तो भरपूर परिश्रम करने के बाद भी भौतिक क्षेत्र में कई बार सफलता नहीं मिलती, असफलता मिलती है। या जैसी चाहिए वैसी सफलता नहीं मिलती।

लेकिन यदि हम साधना का काम करें, आत्मकल्याण का काम करें, अपने मन को परिमार्जित करने का काम करें, मन से विकारों और वासनाओं को त्यागने का काम करें जितनी हम मेहनत करते जायेंगे उतनी सफलता मिलती जायेगी। बाहर के लोग प्रतिबन्ध नहीं कर सकते। बाहर के लोग भौतिक रूप से व्यवधान उपस्थित कर सकते हैं। हम कहीं जाना चाहें तो परिवार वाले, समाज वाले या प्रशासन वाले हमें रोक सकते हैं कि आप वहां नहीं जा सकते हैं। जबरदस्ती जाना चाहेंगे तो हमारे हाथ-पांव को बांध करके जेल में डाल सकते हैं या कह सकते हैं कि देखता हूं कि यह काम तुम कैसे करते हो, यह चीज़ कैसे खाते हो? लेकिन आत्मकल्याण के काम में कोई बाधा कैसे डालेगा? हमारे हाथ-पैर को बांध करके अंधी कोठरी में डाल दें वहां अंधी कोठरी में बंधे हुए हम मोह का त्याग कर सकते हैं। उसमें कौन-सा व्यवधान है।

क्या कोई यह कह सकता है कि देखता हूं तुम अपने मन को स्ववश कैसे करते हो? तुम्हारे मन को मैं पकड़ करके रखूंगा। कोई उपाय ही नहीं है। कोई यह नहीं कह सकता है कि देखता हूं तुम अपना कल्याण कैसे कर सकते हो? वह बाहर से गाली दे सकता है, मार सकता है और अपमान कर सकता है, इतना अधिकार है लेकिन हम उसमें अपने को न जोड़ें, बस कल्याण का काम पूरा। कल्याण का काम मन से होता है और मन को निर्मल बनाने में, अपने अधीन रखने में हर आदमी स्ववश है लेकिन हम यही काम नहीं करते। जहां बहुत सारे प्रतिबन्ध हैं, विघ्न-बाधाएं हैं उसके लिए तो होड़ मची हुई है। नौकरी पाने के लिए, धन पाने के लिए कितनी होड़ है और जहां नहीं है वहां सब पीछे हैं।

मान लो एक जगह एक साथ सौ लोग बैठे हुए हों और सभी के मन में यह कामना हो जाये कि हम भारत के प्रधानमंत्री बन जायें तो यह संभव ही नहीं है। एक साथ इतने लोग प्रधानमंत्री कैसे बनेंगे। भारत का प्रधानमंत्री तो एक समय में एक ही व्यक्ति होगा। कितनी भी मेहनत करे चार-छः लोग एक साथ प्रधानमंत्री नहीं बन सकते। किसी प्रदेश का मुख्यमंत्री बनना चाहें तो भी नहीं बन सकते। अधिक दूर तो छोड़ दें जिस मोहल्ले में रहते हों दो लोग एक साथ वहां के सभासद भी नहीं बन सकते। एक ही व्यक्ति बनेगा। लेकिन सही ढंग से सबकी समझ में बात आ जाये और सब सही ढंग से मेहनत करने लगें तो सबके सब एक साथ अपने मन को निर्मल कर सकते हैं। अपने मन को स्ववश कर सकते हैं और सब एक साथ आत्मकल्याण का काम कर सकते हैं। इसमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जहां पूरी खुली छूट है वहां सब पिछड़े हुए हैं। वहां कोई प्रयास ही नहीं करते हैं। उसके लिए तमाम बहाने बना देते हैं और जहां तमाम प्रतिबन्ध हैं, बिघ्न-बाधाएं हैं वहां दिन-रात एक करके भी थकते नहीं हैं।

साधना में, ध्यान में, चार-छह दिन या महीना भर बैठे और कहने लगे, साहेब, महीना भर तो ध्यान कर लिया, मन स्ववश नहीं हुआ, मन तो भागता ही है, मन वश में नहीं होता। ध्यान करना छोड़ दिये। यह नहीं सोचते कि मन को चंचल बनाने में हमने पूरी जिंदगी लगायी है। पूरी जिन्दगी में जो मन चंचल बना हुआ है वह एक महीने के ध्यान से कैसे ठीक हो जायेगा। आध्यात्मिक क्षेत्र में हम चाहते हैं तत्काल सफलता मिले और वह भी पूरी की पूरी। वहां धैर्य नहीं रखना चाहते किन्तु भौतिक क्षेत्र में कितना धैर्य रखते हैं। किसान खेती करता है। बीज डालता है। चार महीने

प्रतीक्षा करता है। धीरज रखता है, तब फसल तैयार होती है। अनाज घर में आता है।

सामान्य नौकरी पाने के लिए कई वर्ष पढ़ना पड़ता है तो वही बात यहां क्यों लागू नहीं करते। यहां उतना धीरज, साहस, मेहनत क्यों नहीं करते। क्योंकि इसमें लाभ का निश्चय नहीं है। जब आत्मकल्याण में पूर्ण लाभ का निश्चय हो जायेगा तब इसके लिए तत्पर हो जायेंगे। फिर पूरी मेहनत के साथ इसमें लग जायेंगे और जो जितनी मेहनत करेगा उसको उतनी सफलता मिलेगी। बाहरी और किसी बात में हमारी स्ववशता नहीं है। पूर्ण स्ववशता है आत्मकल्याण का काम करने में और वही हमारे जीवन का मुख्य काम है।

संसार के जितने काम हैं वे सब गौण हैं। वे जीवन का उद्देश्य नहीं हैं। धन कमाना या और कुछ करना, प्रचार-प्रसार करना जीवन का उद्देश्य नहीं है। यह तो संतों से, गुरुजनों से हमें ज्ञान की जो बातें मिलीं, अच्छा रास्ता मिला उन बातों को, रास्ता को अन्य लोगों तक पहुंचाने के लिए प्रचार-प्रसार किया जाता है। हम भटक रहे थे, संत-गुरु मिले तो रास्ता बताये। हमारा भटकाव दूर हुआ, सही रास्ता हमें मिल गया। अन्य लोग भी भटक रहे हैं। जो सुनना चाहते हैं उनसे अपनी बात कह दें, मानें या न मानें उनकी मर्जी है।

कौन किनसे अपनी बात मनवा सका है। कितने लोग कहते हैं—क्या करें साहेब, जमाना बड़ा खराब हो गया है। लड़का कहना नहीं मानता। यह शिकायत केवल आपकी थोड़े है। यह शिकायत सदैव से रही है। जरा ख्याल करें महाभारत का। श्रीकृष्ण महासमर्थ महाज्ञानी पुरुष, हर क्षेत्र में अद्वितीय। ऐसे महाज्ञानी महासमर्थ अद्वितीय पुरुष कृष्ण के बच्चे उनके सामने ही घोर शराबी हुए और शराब पी-पी करके प्रभास तीर्थ में जाकर आपस में एक दूसरे को काट करके मर गये। श्री कृष्ण अपने परिवार वालों को समझा नहीं पाये। अपने परिवार वालों से अपनी बात मनवा नहीं पाये। महाराज कृष्ण के बच्चे उनकी बात नहीं मानें तो आपके बच्चे आपकी बात नहीं मानते, तो कौन-सी बड़ी बात हो गयी। इसका ख्याल करें तो संतोष हो जायेगा।

श्री कृष्ण से तो आप बड़े नहीं हैं। उनसे अधिक तो बुद्धिमान नहीं हैं। हर बात में कम हैं। इसमें शिकायत करने की, खीझने की कौन सी बात है। लेकिन श्री कृष्ण की विशेषता क्या है? उनके सामने उनका पूरा परिवार कटकर मर गया। पूरे परिवार का विनाश हो गया और वे एक पेड़ के नीचे जा कर ध्यान में बैठ गये। कैसी आत्मस्ववशता रही होगी। सामान्य परिवार में एक छोटा-सा बच्चा या नब्बे साल का बूढ़ा असमर्थ व्यक्ति मर जाता है तो लोग बहुत विलाप करते हैं, खाना-पीना छोड़ देते हैं और जिनके सामने पूरा परिवार कट करके मर गया हो वे समाधि में बैठ जायें, ध्यान में बैठ जायें बड़ी अद्‌भुत बात है। कितनी स्ववशता उनकी अपने आप पर रही होगी। कितना उन्होंने अपने आप को संभाला होगा। यह उनकी विशेषता है। यह उनसे शिक्षा लेनी चाहिए।

लेकिन हम उनकी केवल पूजा कर लेते हैं, शिक्षा नहीं लेते हैं। पदे-पदे हमें शिक्षा मिलती है लेकिन हम शिक्षा लेना चाहें तब। हम तो महापुरुषों को पूजने की वस्तु बना लेते हैं। उनकी पूजा करेंगे लेकिन उनकी आज्ञा, उनकी बात नहीं मानेंगे। कह देते हैं वे तो महान थे तब ऐसा कर सके। हम वैसा कहां कर सकते हैं? हम लोगों के पास शक्ति कहां है? लेकिन उनमें जो शक्ति थी वह शक्ति हममें और आपमें भी है। अंतर समझ में है, अंतर करने की शक्ति में है। हम करना नहीं चाहते। जानते हैं, समझते हैं फिर भी करना नहीं चाहते।

जिन कर्मों से, जिन चिंतन से, जिन वचनों से आज तक हमें ठोकर लगी है, दुख मिला है हम उनका भी त्याग कहां कर पाते हैं? जिन कर्मों से अनेक ठोकरें हम खा चुके हैं अभी भी वही कर्म कर रहे हैं। अपनी भूल से तो हम सीख ले सकते हैं। दुनिया को देखकर सीख न ले पाते हों तो कोई बात नहीं, अपनी भूल से तो सीख ले लें कि पूर्व में मुझसे क्या-क्या गलतियां हुईं और उसका क्या-क्या कुपरिणाम मेरे सामने आये। आदमी

अपने जीवन की ही बीती हुई घटनाओं को देखे। हमारे जीवन की भूल, हमारी ही गलतियां हमारा गुरु बन सकती हैं। अपनी भूल से हम सीख ले सकते हैं। जो-जो गलत कर्म हुए, जो-जो गलती हुई, जिनसे ठोकर लगी, जिनसे दुख मिला, पीड़ा मिली उनको छोड़ते चले जायें बस सुधार हो जायेगा। करना क्या है? अपनी गलतियों का त्याग करना है और जो अच्छा लगे उनको करते चले जाना है और इसमें कौन-सी विवशता है। बाहरी कोई विवशता नहीं है। विवशता है तो आदत की, आसक्ति की। आदत हमने खराब बना ली है। उन आदतों के प्रति, आसक्ति के प्रति बड़ी प्रियता है। जब तक हम गंदी आदतों का सुधार नहीं करेंगे तब तक ज्ञान की बातें भी क्या करेंगी।

हम मान लेते हैं कहना-सुनना हमारा काम है। सुन लिये बस हमारा बेड़ा पार हो गया। कह दिया हमारा बेड़ा पार हो गया। इससे किसी का बेड़ा पार नहीं होता। कितनी भी हम ज्ञान की बातें सुनते रहें आचरण नहीं करेंगे, साधना नहीं करेंगे तो कहना-सुनना सब बेकार चला जायेगा। इसलिए आत्मशोधन का काम करें। आत्मज्ञान और आत्मशोधन बस यही दो काम करना है। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—रहहू संभारे राम बिचारे, कहता हौं जे पुकारे हो। मैं पुकार करके कहता हूं। अपने आपको संभाल करके रखो और राम का विचार करते रहो।

सार यह है कि हम बाहरी किसी बात में स्ववश नहीं हैं। एक ही बात में स्ववश हैं आत्मकल्याण का काम करने में और उसके लिए आज हमें भरपूर अवसर और सामग्री मिली हुई है। इनका लाभ लें और आत्मकल्याण का काम करें।

—धर्मेन्द्रदास

मंत्र

लेखक—श्री विजय चितौरी

दस साल बाद गांव लौट रहा था। दस साल...! यह कोई छोटा समय नहीं होता। इस दरम्यान देश-दुनिया में न जाने कितने बड़े-बड़े बदलाव हुए हैं। अपना गांव भी कुछ-न-कुछ जरूर बदला होगा। गांव बदला हो या न बदला हो लेकिन अपना शहर (तब का इलाहाबाद अब का) प्रयागराज तो जरूर बदला होगा। आखिर अब उसकी गिनती देश के स्मार्ट शहरों में होती है। यही सब सोचते-सोचते स्टेशन के बाहर निकला। बाहर सड़क पर आते ही ई-रिक्शा वाले ने रास्ता रोक लिया :

'आइये सर, कहां चलना है?'

'सिविल लाइंस बस अड्डा' मेरे मुंह से निकला।

'बैठिये...' उसने कहा।

'कितना लोगे...' मैंने पूछा।

'जो सबसे लेते हैं वही आपसे ले लेंगे' उसने कहा और मैं उस ई-रिक्शे पर बैठ गया।

अच्छा लगा। यह ई-रिक्शा, प्रयागराज के स्मार्टनेस की पहली निशानी थी। रिक्शा भी स्मार्ट और रिक्शा वाला भी। कहां पहले वाला साइकिल टाइप, फटी सीटों वाला खड़खड़िया रिक्शा और कहां बैटरीचालित बिना आवाज किये तेज भागने वाला यह ई-रिक्शा। इसी तरह कहां पहले का फटा-पुराना कपड़े-पहने दीन-हीन-कमजोर रिक्शावाला और कहां यह पढ़ा-लिखा साफ सुथरे कपड़ों में खड़ी बोली बोलने वाला स्मार्ट ई-रिक्शा वाला।

स्टेशन से बस अड्डा कितनी दूर है। कुछ ही मिनटों में मैं बस अड्डे पर पहुंच गया। गांव को जाने वाली बस भी तुरन्त मिल गयी।

जैसे ही बस आगे बढ़ी, शहर के स्मार्टनेस के चिह्न दिखने लगे। चौड़ी-चौड़ी सड़कें, चौराहों पर स्वचालित लालबत्ती, चुस्त-दुरुस्त ड्यूटी पर तैनात यातायात पुलिस और सरपट भागते वाहन। देर नहीं लगी बस नये यमुना पुल पर आ गयी। जब मैंने प्रयागराज छोड़ा था, यह पुल नहीं था। पुराने पुल से चींटी की तरह रेंगती हुई सवारियां आगे बढ़ती थीं। अब तो नये यमुना पुल पर वाहन फर्राटा भर रहे हैं। पैदल और साइकिल सवारों के लिए अलग लेन है। उनकी सुरक्षा का भी खास ध्यान रखा गया है।

मानना पड़ेगा कि अपना प्रयागराज स्मार्ट हुआ है। लेकिन अपना गांव? क्या वहां तक विकास की कोई किरण पहुंची भी है या आज भी वे अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में घिसट रहे हैं। यही सब सोचते-सोचते कब मेरी बस नैनी जेल के पास आ गयी पता ही नहीं चला। बस रुकते ही बस से कुछ सवारियां उतरने लगीं और कुछ चढ़ने का प्रयास करने लगीं। चढ़ने वालों में एकाएक मेरी निगाह दीनू पर पड़ी। दीनू, बचपन का मेरा जिगरी दोस्त। लेकिन वह यहां जेल के पास कैसे? मैंने जोर से पुकारा : दीनू...। आवाज दीनू के कान तक पहुंच चुकी थी। मुझे देखते ही उसका मुरझाया हुआ चेहरा खिल गया। सवारियों के बीच जगह बनाता हुआ वह मेरे पास तक पहुंच गया। मैंने अपनी ही सीट पर उसके लिए थोड़ी सी जगह बनायी। दीनू बैठ गया।

"दीनू कैसे हो? और यहां जेल रोड पर...?" मैंने दीनू से सवाल किया।

सवाल पर दीनू का चेहरा उतर गया। संभवतः यह उसके लिए अरुचिकर सवाल था। उसने सवाल को टालते हुए कहा : 'भइया, मेरी कहानी तो लम्बी है। लेकिन पहले तुम अपना हाल-चाल बताओ। दस साल हो गये होंगे गांव छोड़े?"

"हां यार, दस साल तो हो गये। महानगरों की जिन्दगी होती ही ऐसी है कि आपाधापी और भाग-दौड़ में समय का कुछ पता ही नहीं चलता।" मैंने जवाब दिया।

'बाल-बच्चों को नहीं लाये?'

'बाल-बच्चे शहरी बन चुके हैं। उन्हें गांव अच्छा नहीं लगता। उन्हें यहां आने के लिए मैंने कोई जोर भी नहीं दिया। खैर, अब तुम अपनी बताओ?'

दीनू के चेहरे पर एक बार फिर पीड़ा की रेखाएं उभरीं। निराशा भरे स्वर में उसने कहा : 'अब क्या बताऊं भाई! किस्मत रूठ गयी है। परधानी का चुनाव तो हारा ही, दोनों बेटे भी नालायक निकल गये। बड़का जेल में है उसी से मिलाई करने आया था...।' कहते-कहते दीनू की आंखों में आंसू भर आये।

'बड़के यानी प्रिंस जेल में...?' मैंने कौतूहलवश पूछा! दीनू : हां, वही है जेल में। ऐसे नालायक बेटे का मुंह भी नहीं देखना चाहिए। लेकिन चार लोगों का कहना मानना पड़ता है। संतान तो अपनी ही है न।'

'हां, यह तो ठीक है। लेकिन किस अपराध में वह जेल में है?'

'मित्र, मुझे कहने में शरम आ रही है और आपको सुनने में शरम आयेगी...छोड़ो भी यह सब। कुछ और बात करो।'

'नहीं यार, मुझसे क्या छिपाना। बताओ न?'

'अब गांव की राजनीति तो तुम जानते ही हो। विरोधी लोग हमेशा दांव सेंकने को तैयार बैठे रहते हैं। थोड़ी कमी प्रिंस की भी है। एक लड़की के साथ छेड़खानी में अपने साथियों के साथ वह भी फंसा दिया गया।'

'ओह! तो ये बात है।' मेरे मुंह से निकला।

'भइया, सारी मान-प्रतिष्ठा माटी में मिला दिया इस नालायक ने।' दीनू ने कहा।

इस बीच कोई बस स्टाप आ गया था। वहां बस रुक गयी। कुछ सवारियां उतरीं और कुछ चढ़ीं। मेरे बगल की सीट भी खाली हो गयी और अब उस पर दीनू आराम से बैठ गया। बस फिर चल पड़ी।

दीनू ने अपनी चुप्पी फिर तोड़ी। इस बार उसने बोलना शुरू किया तो बोलता ही गया :

"राजू भइया, तुम तो जानते ही हो कि मैंने अपने

इन्हीं दोनों लड़कों के लिए क्या-क्या नहीं किया। आप लोग तो नौकरी-चाकरी में निकल गये लेकिन मैंने गांव में रहकर ही अपनी होशियारी से क्या-क्या नहीं हासिल किया। तीन तिकड़म करके परधानी का चुनाव जीता। कई बीघे खेत-बारी बनाया। बाजार में तीन-चार प्लाट-जमीन खरीदी। घर में बिजली, पंखा, कूलर, रंगीन टी.वी., फ्रिज क्या नहीं है। कार तो परधान बनने के पांच-सात महीने बाद ही आ गयी थी।

"राजू भाई, यह सब तो ठीक है। बाल-बच्चों के लिए सभी यह सब करते हैं। इन दोनों नालायकों को पढ़ाने-लिखाने में भी मैंने कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी। सेंट मैरी से अच्छा कौन स्कूल है इलाके में? मैंने इन दोनों को वहां पढ़ाया। राजकुमार की तरह दोनों फोर ह्वीलर से स्कूल जाते थे। स्कूल के बाद कोचिंग के लिए मंहगा टीचर रखा। लेकिन सब बेकार गया। तुलसी बाबा कह गये हैं न कि "होइहैं सोइ जो राम रचि राखा।' बड़के का हाल तो आप सुन ही चुके हो, जेल की रोटी तोड़ रहा है और छोटू भी कहीं किसी ढाबे पर साथियों के साथ जुआ खेल रहा होगा।"

"राजू भइया, सच बात तो यह है कि मेरे घर से अब लक्ष्मी मइया रूठ गयी हैं। जबकि मैंने धरम-करम में कोई कंजूसी नहीं की है। घर के दरवाजे पर मंदिर तो तभी बन गया था जब तुम गांव आये थे। वैसे भी मैं पूजा-पाठ करता हूं। साल में एक बार जन्माष्टमी पर भजन, कीर्तन और भंडारा भी करवाता हूं।

"खैर छोड़ो भी इन सब को। लम्बी रामकहानी है मेरी। जितनी ही सुनाओ बढ़ती ही जायेगी। अब अपनी बताओ। भाभी कैसी हैं? पप्पू और बबली की पढ़ाई कैसी चल रही है?"

दीनू अब तक काफी कुछ अपने मन की भड़ास निकाल चुका था। तभी तो वह मेरे परिवार के बारे में जानने के लिए उत्सुक था। लेकिन अभी भी उसके पास बहुत कुछ था जिसे वह छिपा रहा था। मैंने उसे कुरेदा: 'दीनू, एक बार तुम होली पर पिट भी गये थे। क्या बात थी यार?'

दीनू : 'अरे, छोड़ो भी। छोटी-मोटी बातें हैं। गांव-गिरांव में होती ही रहती हैं।'

'अरे, ये छोटी बात है? गांव का परधान होकर गांव वालों द्वारा ही पिट जाये, उसे तुम छोटी-मोटी बात कहते हो?'

'वो होली का मौसम था। शराबियों-कबाबियों का हुड़दंग था। मैं भी फंस गया था उसमें। किसने बताया था आपको यह सब? चाचा ने बताया होगा।'

'नहीं, चाचा ऐसी फालतू बातें नहीं बताते। यह घटना तो अखबार में देखी थी।'

'अरे गांव की घटना दिल्ली के अखबार में?'

'नहीं, दिल्ली के अखबार में नहीं, यहीं के अखबार में थी।'

'उस बीच अपने शहर आये थे क्या?'

'नहीं यार, जमाना अब हाईटेक हो चुका है। अपने जेब में रखे स्मार्टफोन से इंटरनेट पर अब दुनिया का कोई भी अखबार देखा जा सकता है। दिल्ली में रहकर भी मैं समय निकालकर यहां का अखबार भी देखता रहता हूं।'

'क्या था अखबार में?'

'अरे भाई, तुम्हारे नाम से खबर थी। जिसमें बताया गया था कि प्रधान दीनानाथ ने अपने घर पर दारू-पार्टी रखी थी। शराबी जब शराब पीकर उन्मत्त हुए तो आपस में लड़ने लगे। प्रधानजी ने बीच-बचाव किया तो शराबी उन्हीं पर टूट पड़े। यह भी था कि प्रधान जी को शराबियों ने इतना मारा कि अस्पताल में भर्ती होना पड़ा।'

मेरी बात पर दीनू झेंपने लगा। बोला : 'छोड़ो भी यार, ये सब शराबियों-कबाबियों की बातें हैं। इनके बीच में ये सब होता ही रहता है।'

मैं : 'अच्छा चलो छोड़ता हूं ये सब। अब अपने बचपन के उस लंगोटिया यार रमई का हाल तो बताओ। जब से गांव छोड़ा है, उसका समाचार भी नहीं मिला।'

'अरे भइया, रमई का क्या पूछना? उसकी तो मौज ही मौज है। तीन बेटे हैं। दो सरकारी नौकर हैं और एक

खेती-बारी संभालता है। रमई को अब घर-गृहस्थी से कोई मतलब नहीं, सुबह-शाम मौन साधते हैं, कोई किताब है उसका पाठ करते हैं और दिन में भी दुआरे नीम तले बैठ सत्संग की बातें करते हैं। दो-चार लोग तो उनके इर्द-गिर्द बैठे ही रहते हैं। कभी-कभी अपने गुरु के आश्रम में भी चले जाते हैं। रमई अब पहले वाले रमई नहीं हैं। लोग उनसे सम्मान और अदब के साथ बात करते हैं। राजू भइया, सच्ची बात तो ये है कि हमारे घर से रूठी लक्ष्मी मइया अब रमई के घर में ही विराजमान हो गयी हैं।'

दीनू के मुंह से लक्ष्मी के रूठने वाली बात पर मुझे हंसी आ गयी। यद्यपि दीनू ने अपनी बात बड़ी वेदनापूर्ण शब्दों में व्यक्त की थी। दीनू को मेरा यह व्यवहार बड़ा अटपटा लगा। बोला : 'भइया, आप तो मेरी बात की हंसी उड़ा रहे हैं?'

'लक्ष्मी मइया के रूठने वाली बात पर हंसी आ गयी।' मैंने कहा।

'इसमें हंसने जैसी तो कोई बात नहीं है।'

'दीनू, हंसी इसलिए आई कि तुमने लक्ष्मी मइया को अबोध बच्चा समझ लिया है जो आइसक्रीम के लालच में पड़ोसी के दरवाजे चला जाये। सच तो यह है कि तुमने धक्का देकर लक्ष्मी मइया को घर से निकाला है।'

'भइया, यह आप क्या कह रहे हो? क्या कोई घर आयी लक्ष्मी मइया को भगाता है?'

'दीनू, सच्ची बात कड़वी होती है। लेकिन तुम कहलवाना ही चाहते हो तो सुन लो। मेरा तुम्हारे ऊपर कोई आरोप नहीं है। तुमने अभी बातचीत में खुद स्वीकार किया है कि तीन-तिकड़म करके परधानी हासिल किये हो, गांव के विकास के लिए मिले पैसे से कार खरीदी, अन्य सुख-सुविधा की चीजें जुटाई, बच्चों को मंहगे स्कूल में जरूर भेजा लेकिन ये भूल गये कि बच्चों की पहली पाठशाला उसका परिवार होता है। जिस परिवार से साधु-संतों और भले लोगों का रिश्ता टूट जाये, जहां शराबियों-जुआड़ियों का अड्डा हो जाये, वहां लक्ष्मी मइया भला कैसे ठहर सकती हैं? तुम स्वीकार करो या न करो, सच तो यह है कि तुमने घर का वातावरण इस लायक रखा ही नहीं कि लक्ष्मी मइया तुम्हारे घर पर निवास करें।'

मेरी खरी-खरी बात दीनू को अन्दर तक बेध गयी। वह सिर झुकाये थोड़ी देर मौन बैठा रहा।

मैंने दीनू के सिर पर हाथ फेरा। प्यार से पूछा : 'मित्र, क्या हुआ, चुप क्यों हो गये?'

उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा। उसकी आंखें डबडबाई हुई थीं। वह इस समय पश्चाताप में अन्दर ही अन्दर जल रहा था। भर्राई आवाज में बोला : 'राजू भइया, आपकी बात सोलहों आने सच है। ये मंत्र अगर आप मुझे पहले दे देते तो मेरा इतना पतन न होता...।'

अब तक गांव का बस स्टाप आ गया था। हम दोनों बस से उतरने की तैयारी करने लगे।

❑

वो ही इन्टेलीजेण्ट है

रचयिता—ब्रह्मचारी रामलाल

नई पीढ़ी का कैसा डवलपमेंट है
चार सौ चालीस वोल्ट का करेंट है
कपड़े छोटे पूरे बदन में सेट है
लड़की लड़कों के नजरों का एक्सीडेंट है
दिल के रोगी का भला क्या ट्रीटमेंट है
कैरियर की फिकर नहीं जबकि स्टूडेंट हैं
सम्हाले जो खुद को वो ही इनटेलीजेंट है
वरना दिल्ली से दुखी होना परमानेन्ट है
रचनात्मक काम करो तन साधन सीमेंट है
मरने के बाद जीवन का होता कमेंट है
जीवन जीने की कला सबसे अच्छा टैलेंट है
वाइब्रेशन रहित जीवन निर्द्वन्द्व व साइलेंट है
नशा करने वाले सब समय वाइलेंट है
दुखों से बचने के लिये सादगी प्रेम टेंट है
''रामलाल'' जिन्दगी भूत, भविष्य नहीं प्रेजेंट है

बीजक चिंतन

हृदय-घर के स्वामी आत्मदेव को पहचानो

शब्द-102

हो दारी के ले देउँ तोहि गारी, तैं समुझि सुपन्थ बिचारी॥
घरहुक नाह जो अपना, तिनहुँ से भेंट न सपना॥
ब्राह्मण क्षत्री बानी, तिनहुँ कहल नहिं मानी॥
योगी जंगम जेते, आपु गहे हैं तेते॥
कहहिं कबीर एक योगी, वो तो भरमि भरमि भौ भोगी॥

शब्दार्थ—हो= हे। दारी= दासी, बुंदेलखंड में स्त्रियों को दी जाने वाली एक गाली, कुलटा नारी, पुंश्चली, 'अपनो पति छांड़ि औरनिसों रति ज्यों दारनि में दारी'—स्वामी हरिदास; माया। गारी= गाली। नाह= स्वामी। बानी= बनिया, वैश्य। आपु= स्वयं, आपा, अहंकार।

भावार्थ—हे माया के गुलाम! ले, मैं तुम्हें गाली देता हूं। तू विचारकर अच्छे मार्ग को समझ ले! ॥ 1 ॥ जो अपने हृदय-घर का स्वामी चेतन आत्मा है उससे तो तू स्वप्न में भी भेंट नहीं करता, अर्थात कभी भी निजस्वरूप का चिन्तन नहीं करता॥ 2 ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये द्विजत्व के अहंकारी निर्णय वचन को नहीं मानते॥ 3 ॥ जितने योगी, जंगमादि मतवादी हैं, ये भी अपने-अपने संप्रदाय का अहंकार पकड़कर बैठे हैं॥ 4 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि षटदर्शनियों में जो एक योगी हैं ये तो योग के नाम पर भटक-भटककर भोगी ही बने हैं॥ 5 ॥

व्याख्या—कबीर साहेब विविध ढंग से संसार को समझाते हैं। वे यहां अपने श्रोताओं को गाली देकर समझाते हैं। यह गाली कोई क्रोधपूर्वक नहीं है, किन्तु स्नेहपूर्वक है। जैसे कोई अपने बच्चे को खेलाते समय उसे स्नेह से मुन्ना, बच्चा, बप्पा, बदमाश, बेईमान आदि अनेक शब्द कह देता है, वैसे यहां सद्गुरु ने अपने श्रोताओं को स्नेहपूर्वक 'हो दारी के' कहा है। ऊपर शब्दार्थ में आपने देख ही लिया है कि 'दारी' के अर्थ क्या हैं। दारी दासी या कुलटा नारी है।

यहां दारी शब्द से माया का अभिप्राय है। यह जीव माया का हो गया है। अर्थात यह माया का गुलाम हो गया है। कबीर साहेब के सामने श्रोता इकट्ठे हुए। उन्होंने देखा कि लोग ज्ञान की बातें सुनकर भी माया का मोह छोड़ नहीं पाते हैं। इसलिए उन्होंने स्नेहपूर्वक कहा कि आओ बैठो, मैं तुम लोगों को गाली देने जा रहा हूं, धिक्कारने एवं लानत-मलामत करने जा रहा हूं। तुम लोग माया के गुलाम हो गये हो। तुम लोग दारी के हो गये हो, माया के दास हो गये हो। स्नेहपूर्वक अपने श्रोताओं को दी गयी यह गाली तो बहुत मधुर है। ईसा की सोलहवीं शताब्दी के प्रस्थानभेद के लेखक प्रकांड पंडित तथा संन्यासी मधुसूदन सरस्वती अन्त में श्रीकृष्ण के रसिकरूप के उपासक हो गये थे, तो श्रद्धाविह्वल हो उन्होंने श्रीकृष्ण को प्रेम से गाली दे डाली। वे कहते हैं—"यह ठीक है कि अद्वैत ज्ञान के मार्ग पर चलने वाले मुमुक्षु मेरी उपासना करते हैं, यह भी ठीक है कि आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके मैं स्वराज्य के सिंहासन पर आरूढ़ हो चुका हूं; किन्तु क्या करूं एक कोई गोप-वधुओं का प्रेमी शठ है, उसी हरि ने बलपूर्वक मुझे अपना दास बना लिया।"[1]

यहां सद्गुरु कबीर श्रोताओं को प्रेमपूर्वक उलाहना देते हुए कहते हैं कि तुम लोग ज्ञान की बातें हजार बार सुनकर भी आध्यात्मिक दिशा में अपेक्षित सुधार नहीं करते हो, यह तुम्हारी प्रबल मायासक्ति का लक्षण है। हे कल्याणार्थियो! तुम विचार करो और उस सुपंथ को समझने का प्रयास करो, जिस पर चलकर तुम्हारा जीवन आनंदमय हो। वही काम, वही व्यवहार तथा वही रास्ता ठीक है जिससे मन मलिनताओं से मुक्त होकर सदैव

---

1. अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥
(कल्याण, भक्तचरितांक, पृ. 494, सन् 1952)

प्रसन्न बना रहे। मन की मलिनता दुख है और मन की पवित्रता सुख है।

"घरहुक नाह जो अपना, तिनहुं से भेंट न सपना।" जो घर का अपना मालिक है उससे तुम्हें सपने में भी भेंट नहीं है। घर है हृदय, उसमें चेतनदेव एवं आत्मदेव निवास करता है। वही तुम्हारा स्वरूप है, वह तुम्हीं हो। वही घर का स्वामी है। वही तो हृदय-मंदिर का मालिक है। इतना ही नहीं, वही अपने आप का स्वामी है। उसको सीधा कहें तो तुम्हीं अपने स्वामी हो। परन्तु तुम अपने इस दिव्यस्वरूप का कभी भूलकर स्मरण नहीं करते। तुम स्वयं अपने कर्मों के विधाता हो, अपने आप का स्वामी हो। अपने आप के आश्रय हो। तुम्हारा अपना आत्मस्वरूप ही आश्रय और आश्रित दोनों है। अर्थात तुम स्वयं अपने आपके निधान हो। तुम अपने आप में परमपूर्ण हो; क्योंकि तुम्हारा मौलिक स्वरूप शुद्ध-बुद्ध एवं निष्काम है। परन्तु खेद की बात यह है कि तुम इस अपनी दिव्यता को नहीं समझते हो और अपनी पूर्णता के लिए जगह-जगह भटकते हो। तुम स्वयं सभी भगवानों के भगवान, परमात्माओं के परमात्मा तथा ब्रह्म के ब्रह्म हो, परन्तु अपनी इस परम ऊंचाई को न समझकर भगवान, परमात्मा तथा ब्रह्म के लिए दर-दर ठोकरें खाते हो। अतः हे साधक! बाहर भगवान, परमात्मा तथा सुख खोजने की मृगतृष्णा छोड़ो। तुम बाहर से लौटकर अपने आप में पूर्ण प्रतिष्ठित होओ।

"ब्राह्मण क्षत्री बानी, तिनहुं कहल नहिं मानी।" ये ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अपने द्विजत्व के अहंकार में डूबे हैं। ये निर्णय के वचनों पर ध्यान नहीं देते। यहां कबीर साहेब उक्त तीनों वर्णों को ही ऐसा कहते हैं, अन्तिम चौथे वर्ण को नहीं कहते। इससे ऐतिहासिक क्षेत्र पर प्रकाश पड़ता है। कबीर साहेब पूरी मानवता के पक्षधर थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णव्यवस्था-जनित सुविधाओं तथा प्रतिष्ठाओं के उपभोक्ता थे। कबीर साहेब कहते थे कि पूरा मानव-समाज मूलतः समान सब दिशाओं में उन्नति करने, सुविधाओं को पाने तथा प्रतिष्ठा का अधिकारी है। किसी कुल-परिवार पर किसी व्यवस्था का प्रतिबन्ध न होना चाहिए कि वह अपनी योग्यता के अनुसार अपनी उन्नति ही न कर सके। विदित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा बनिया के बाद शूद्र कहे जाने वाले बंधुओं पर अनेक प्रतिबन्ध थे। वे पढ़ नहीं सकते थे, किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकते थे, मंदिर में प्रविष्ट नहीं हो सकते थे, संन्यास नहीं ले सकते थे, वरासन पर बैठ नहीं सकते थे। वे केवल मोटी सेवा का काम कर सकते थे। प्रथम त्रिवर्ण उसी चौथे वर्ण से सारा काम कराकर तथा सारा उपार्जन कराकर सारी सुविधा का भोग कर रहा था, परन्तु वह जिससे सुविधा पा रहा था, उस अन्तिम चतुर्थ वर्ण को सदैव उपेक्षित बनाये रखने के लिए अपने तथाकथित धर्मशास्त्रों में नये-नये नियम-कानून बनाये जा रहा था। वर्णव्यवस्था का ऐसा क्रूर पंजा था कि उसने धर्म का जामा पहनकर चौथे वर्ण के मुंह पर मौन की पट्टी बांध दी थी। वर्णव्यवस्था के भ्रामक और क्रूर नियम ने प्रथम के त्रिवर्ण में मिथ्या अहंकार तथा अन्तिम चौथे वर्ण में झूठी हीनभावना की ग्रन्थि पैदा कर दी थी जिससे समाज का आज भी पूर्ण उद्धार नहीं हो पाया है। पहले कभी मनुष्यों की योग्यता के अनुसार उन्हें काम में नियुक्त किया जाता रहा हो, और वर्णव्यवस्था जन्मजात न होकर केवल काम का बटवारा रहा हो, परन्तु इधर हजारों वर्ष से जो उसका रूप है वह अत्यन्त घृणित है। इस वर्णव्यवस्था ने हिन्दू समाजरूपी शरीर में पक्षाघात का काम किया है। इससे भारतीय समाज को लकवा मार गया। वर्णव्यवस्था ने मनुष्य के मौलिक अधिकार को छीन लिया। आचार और ज्ञान से कोई प्रयोजन न रखते हुए वर्णव्यवस्था की यह मानसिकता है कि ब्राह्मण नामधारी बड़ा है, क्षत्रिय उससे छोटा है, वैश्य उससे छोटा है, शूद्र उससे छोटा है तथा अतिशूद्र एवं अंत्यज उससे छोटा है। शूद्र या अतिशूद्र कहा जाने वाला व्यक्ति आचार और ज्ञान की कितनी ही ऊंचाई पर चढ़कर भी वर्णव्यवस्था के अनुसार श्रेष्ठ एवं पूज्य नहीं हो सकता और ब्राह्मण नामधारी शीलभ्रष्ट होकर भी श्रेष्ठ एवं पूज्य है। इस अज्ञानपूर्ण क्रूर

मानसिकता एवं व्यवस्था ने मानव के मूल अधिकार को छीन लिया।

कबीर साहेब इस व्यवस्था के घोर विरोधी थे। वे कहते थे कि पूरा मानव-समाज मूलतः एक समान है। सब एक ही प्रकृति से रचे गये हैं तथा सब में एक ही समान चेतन तत्त्व निवास करता है। अतएव पूरे मानव-समाज के लिए यह छूट होनी चाहिए कि जिसमें जैसी योग्यता हो अपनी-अपनी उन्नति करे, जैसा कि इस बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वतन्त्र भारत में छूट है। मानव के मूल अधिकार की सुरक्षा के लिए आज भारतीय संविधान है, यह मानो कबीर के विचारों की विजय है। इसके साथ-साथ मनुष्यों की मानसिकता में भी परिष्कार होना चाहिए। कबीर साहेब के इन मानवतावादी विचारों से द्विजातियों को अपने गलत अधिकारों को छिन जाने का भय था। वे देख रहे थे कि वर्णव्यवस्था के पक्षधरों के केन्द्र काशी में ही कबीर ऐसी आग लगा रहा है जिससे द्विजातियों की सुविधा, श्रेष्ठता एवं शोषण-तन्त्र में जबर्दस्त धक्का पहुंचने वाला है। अतएव तथाकथित प्रथम तीनों वर्णों के लोग कबीर से कतराते थे। इसी विशेषता को लेकर सद्गुरु ने यहां कहा—"ब्राह्मण क्षत्रिय बानी, तिनहुं कहल नहिं मानी।" परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाना चाहिए कि इन त्रिवर्णों में कोई उदार था ही नहीं। इनमें से अनेक लोग कबीर साहेब के विचारों के प्रभाव में आये और कितने लोग तो उनके शिष्य बन गये। कबीर के अनुयायी ब्राह्मण सर्वाजीत पंडित, क्षत्रिय वीरसिंह बघेल, वैश्य धनपति श्रीजुड़ावन (श्री धर्म साहेब) तो बड़े-बड़े नाम हैं, इन त्रिवर्णों में से उदार चिन्तक लोग कबीर-विचारों में रंगकर समाज को उस दिशा में ले जाने का प्रयास करते रहे। द्विजातियों के पीछे वर्णव्यवस्था द्वारा लगाये गये पक्षपातपूर्ण नियम बुरे हैं न कि द्विजातियों में उदारतापूर्वक सोचने वालों का अभाव है। कबीर के विचार-पवन को पाकर हजारों-लाखों के अंतर्मन की मानवता की आग सुलगती गयी और वे जो चाहते थे उसका बहुत कुछ अंश आज भारत में संविधान का रूप ले लिया है। उन्होंने छुआछूत की भावना को पाप कहा था तो आज संविधान है कि यदि कोई किसी को अछूत कहता है तो वह न्याय द्वारा दण्डित हो सकता है। जनता, जो बड़ी तथा असली सरकार है उसमें भी उदारता के विचार दिनोदिन बढ़ते जा रहे हैं।

"योगी जंगम जेते, आपु गहे हैं तेते।" साहेब कहते हैं कि ये योगी, जंगमादि षटदर्शनी एवं नाना मतवादी अपने-अपने सांप्रदायिक अहंकार में पड़े नाना मान्यताओं में उलझे हैं। सब अपनी मान्यता को सर्वोपरि मानकर स्वरूपज्ञान एवं आत्मज्ञान से दूर पड़े हैं। "कहहिं कबीर एक योगी, वो तो भरमि-भरमि भौ भोगी।" साहेब कहते हैं कि जो एक योग-संप्रदाय के लोग हैं वे केवल भटकाव में हैं और योग के नाम पर भोगी बने हैं। कबीर साहेब के समय में योगियों का बड़ा प्रचार था। उनका समाज बहुत बढ़ गया था। जो बहुत बढ़ता है उसमें विकृति भी बहुत आती है। लगता है कि कबीर साहेब के समय में योगियों में अच्छे साधकों का बड़ा अभाव हो गया था। सब दिखावा, प्रतिष्ठा एवं धन-धान्य में लीन हो गये थे। इसीलिए कबीर साहेब ने अपनी वाणियों में उन्हें बारम्बार कोसा है। इस शब्द में भी एक बार योगी-जंगम कहकर षटदर्शनियों के साथ योगियों को याद करते हैं और दूसरी बार अन्तिम पंक्ति में केवल उन्हीं को यादकर उन्हीं की भर्त्सना करते हैं।

इस पूरे शब्द में एक ही मुख्य बात है घर के मालिक के दर्शन "घरहुक नाह जो अपना, तिनहुं से भेंट न सपना।" जो अपने घर का मालिक हो उससे स्वप्न में भी न भेंट करना कितनी कृतघ्नता है! जो अपने हृदय-मंदिर का आत्मदेव है उसी को भूले रहना कितना बड़ा अपराध है! इसी का फल है हमारा दुखी बने रहना। साहेब स्नेह से कहते हैं कि हे माया के दास, छोड़ माया का मोह, सुविचारित पंथ को पकड़, स्वरूपसाक्षात्कार एवं आत्मसाक्षात्कार कर। वर्णाभिमान, आश्रमाभिमान एवं संप्रदायाभिमान तेरे आत्मसाक्षात्कार में रोड़े हैं। सारे अभिमानों को छोड़ और अपने चेतनस्वरूप आत्मदेव में रमण कर! ❑

कल्याण

याद रखो—निकम्मा मन प्रमाद करता है। जबतक वह किसी दायित्वपूर्ण कार्य में लगा रहेगा, तबतक उसे व्यर्थ की, अनावश्यक तथा न करने योग्य बातों के सोचने का अवसर ही नहीं मिलेगा, पर जहां दायित्व के काम से छुटकारा मिला—स्वच्छन्द हुआ कि मन उन विषयों को सोचेगा, जिनका स्मरण भी उसे कार्य के समय नहीं होता था।

याद रखो—जब नया साधक ध्यान का अभ्यास आरम्भ करता है, तब उसके सामने सबसे बड़ी एक यही कठिनाई आती है कि अन्य समय जिन सड़ी-गली, गन्दी और भयावनी बातों की उसे कल्पना भी नहीं होती, वे ही उस समय याद आती हैं और वह घबरा-सा जाता है। इसका कारण यह है कि वह जिस वस्तु का ध्यान करना चाहता है, उसमें तो मन अभ्यस्त नहीं है और जिन विषयों में अभ्यस्त है, उनसे उसे हटा दिया गया है; ऐसी हालत में वह निकम्मा हो जाता है। पर निकम्मा रहना उसे आता नहीं; इसलिए वह उन पुराने चित्रों को उधेड़ने लगता है, जो उसपर संस्काररूप से अंकित हैं और जिनके उधेड़ने का उसे अन्य दायित्वपूर्ण कार्यों में संलग्न रहते अवसर नहीं मिलता।

याद रखो—यदि साधक इस स्थिति में घबराकर ध्यान के अभ्यास को नहीं छोड़ बैठेगा और लगन के साथ अभ्यास करता रहेगा तो कुछ ही समय के बाद अभ्यास दृढ़ हो जाने पर मन ध्येय वस्तु के स्वरूप में रम जायेगा और फिर तदाकार भी हो जायेगा।

याद रखो—प्रमादी मनवाला मनुष्य ही ऐसे काम कर बैठता है, जो उसे नहीं करने चाहिए। प्रमाद का अर्थ ही है—करने योग्य कर्म का न करना और न करने योग्य काम करना। इसलिए मन को निरन्तर शुभ चिन्तन में लगाये रखो और उसका उसपर इतना दायित्व थोप दो कि यह काम तुम्हें अवश्य करना है एवं सुन्दर सुव्यवस्थित रूप से करना है। कार्य में इतना संलग्न रहना चाहिए कि उसी का चिन्तन करते-करते नींद आ जाये और उठते ही फिर उसी का चिन्तन हो। ऐसा होने पर तदाकारवृत्ति शीघ्र और सहज होती है।

याद रखो—नये विषय में लगने से मन एक बार घबराता है, रुकता है, ऊबता है और कभी-कभी प्रबलरूप से उसे अस्वीकार भी कर देता है; परंतु इससे घबराओ मत। गाय पहले-पहल नयी जगह, नये खूंटेपर बंधने से इनकार करती है, चाहे वह नयी जगह उसके लिए पहली की अपेक्षा कितनी ही अधिक सुखप्रद क्यों न हो; जरा-सी रस्सी ढीली होते ही या अवसर पाते ही भागकर पुरानी जगह पहुंच जाती है। इसी प्रकार मन भी नये विचार में लगना नहीं चाहता। और इसी कारण विषय-चिन्तन में अभ्यस्त मन भगवच्चिन्तन में लगने से घबराता, रुकता, उकताता और इनकार करता है। पर यदि निराश न होकर उसे निरन्तर लगाते जाओगे तो वह विषय-चिन्तन को छोड़कर भगवच्चिन्तन में वैसे ही लग जायेगा, जैसे गौ कुछ दिनों बाद पुरानी जगह को भूलकर नयी जगह में ही रम जाती है।

याद रखो—जीव का विषय-चिन्तन का अभ्यास बहुत पुराना है। उसे छुड़ाकर भगवच्चिन्तन में लगाने में यदि एक मानव-जीवन का आधे से अधिक काल भी लग जाये तो भी बहुत थोड़ा ही है। मन बड़ा दुर्निग्रह और चंचल है, पर अभ्यास (नूतन-वस्तु-भगवच्चिन्तन में बराबर लगाने) और वैराग्य (पुराने विषयचिन्तन के दुःख-दोष दिखा-दिखाकर उससे हटाने) का सावधानी के साथ सतत प्रयोग करने पर वह भगवच्चिन्तनपरायण हो ही जायेगा। फिर किसी भी प्रमाद की आशंका या सम्भावना नहीं रहेगी। '**शिव**'।

(साभार : कल्याण, जुलाई 2019)

यह जरूरी नहीं कि आदमी हर रोज मंदिर जाये, किन्तु कर्म ऐसे करना चाहिए कि आदमी जहाँ भी जाये वहीं मंदिर बन जाये।

प्रवचन

मन की दशा

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 14-09-2004 को कबीर संस्थान, प्रयागराज में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

आदरणीय संत समाज, प्रिय सज्जनो तथा देवियो! आदमी का मन मानो झरबेर का कांटा है और इसी मनरूपी झरबेर के कांटे में सभी आदमी उलझे हैं। आप जानते होंगे गांव-देहातों में झरबेर क्षुप जाति के छोटे-छोटे पेड़ होते हैं और उनमें बहुत कांटे होते हैं, जो होते तो हैं छोटे-छोटे लेकिन बहुत तेज और नुकीले होते हैं। अवध क्षेत्र में वह 'मकइचा' का कांटा के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध है। जो कोई उसमें पड़ जाये तो उसका उसमें से निकलना बड़ा मुश्किल होता है क्योंकि वह कपड़े में फंस जाता है और पैरों में धंस जाता है। इसी प्रकार हमारा मन भी मानो हमारे लिए मकइचा का, झरबेर का कांटा हो गया है। लोग कहते हैं कि महाराज, क्या करूं, "मैं तो मकइचे के कांटे में उलझा हूं।" मकइचा के कांटे में मानो सभी मनुष्य उलझे हैं। मतलब है कि मन के कंटीले झाड़ीदार जंगल में सब लोग उलझकर महा दुखी हैं। अपना बनाया मन अपने को पीड़ा दे रहा है। इसी मनरूपी कंटीली झाड़ी से निकलने के लिए आध्यात्मिक पथ है।

मन की पांच भूमियां यानी स्थितियां हैं–क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। क्षिप्त भूमि पहली भूमि है और इसका मतलब है–मन में अत्यन्त रजोगुणी मनोभावों का प्रवाह। जवानी, सौंदर्य, लावण्य, माधुर्य, प्रिय पुत्र, सम्मान, पद और प्रतिष्ठा, गुरुवाई, महंती, इन सब के विषय में सोच-सोचकर मन में जो प्रवाहधारा बहती है यही क्षिप्त भूमि है। क्षिप्त का मतलब है बहुत गतिशील। यह अत्यन्त चंचल भूमि है। इस क्षिप्त भूमि में रज वृत्ति का पूर्ण प्रकाश रहता है और तम तथा सत वृत्तियां दबी रहती हैं।

दूसरी वृत्ति है मूढ़ अर्थात मूढ़ दशा। इसमें तमोगुण उद्घाटित रहता है और सत तथा रज दबे रहते हैं। मूढ़ वृत्ति में आदमी को आलस्य और निद्रा दबाये रहते हैं क्योंकि इसमें आलस्य और निद्रा की प्रधानता रहती है और कुछ न करने का मन होता है।

तीसरी विक्षिप्त भूमि है। इसमें रजोगुण और तमोगुण शांत रहते हैं, और सतोगुण प्रकाशित रहता है किंतु बीच-बीच में रजोगुण जोर मारता है। इस भूमि में मन जब होता है तब बड़ा अच्छा लगता है क्योंकि उसमें शीतलता और सरलता रहती है। मन में उद्वेग सदा नहीं रहता है, बीच-बीच में आ जाता है। बीच-बीच में मन में कामविकार तथा और भी मनोविकार आ जाते हैं।

चौथी भूमि है एकाग्र जिसमें सतोगुण का पूरा प्रकाश रहता है, रज तथा तम दबे रहते हैं। यह वृत्ति जब रहती है तब यदि हम ध्यान में लगते हैं तो मन ध्यान में एकाग्र हो जाता है। लेख लिखते हैं तो उसी में मन एकाग्र हो जाता है, हल चलाते हैं तो उस में मन एकाग्र हो जाता है। एकाग्र भूमि में होकर कोई भी काम हम कर रहे होते हैं तो उसी में मन लीन हो जाता है, चंचल नहीं रहता है। इस भूमि में मन अपने उद्देश्य में ही लगा रहता है। विक्षिप्त भूमि में भी सतगुण का प्रकाश रहता है किंतु वह बहुत बलवान नहीं रहता। उसमें रज तथा तम बीच-बीच में आते रहते हैं लेकिन एकाग्र भूमि में सतोगुण का पूर्ण प्रकाश रहता है और रज तथा तम बिलकुल दबे रहते हैं।

निरुद्ध भूमि पांचवीं भूमि है। उसमें सतोगुण भी उभरा नहीं रहता है किन्तु शांत रहता है। यह निरुद्ध भूमि चित्त की सर्वोच्च भूमि है। चित्त की ये पांच भूमियां हैं। इनको भूमि, दशा या अवस्था जो चाहें कहें बात एक ही है। इन पर थोड़ा और विस्तार से विचार करें। क्षिप्त भूमि अत्यन्त रजोगुणी है और नौजवानों में ज्यादा रहती है। पन्द्रह-सोलह वर्ष की अवस्था के थोड़ा

और पहले से ही क्षिप्त भूमि ज्यादा रहती है। उस अवस्था में जवानी, लावण्य और माधुर्य की कल्पना, बड़ी सुन्दरी पत्नी और बड़े सुन्दर पति की कल्पना, बहुत धन, ऐश्वर्य, बहुत पद-प्रतिष्ठा की कल्पना रहती है और एकदम दिमाग आकाश में रहता है।

क्षिप्त भूमि में जीवन में पूरा धोखा रहता है और विवेक न रहे तो यह दशा बुढ़ापे में भी रहती है लेकिन अवस्था का भी अपना प्रभाव तो होता ही है। बुढ़ापा आते-आते तक दुनिया में कितनी ठोकरें और कितने चांटे खाते-खाते अज्ञानी आदमी को भी कुछ न कुछ सूझ होने लगती है। और यह पक्का समझ लो कि इस संसार में चांटे के अलावा और कुछ मिलेगा नहीं। बहुत अपना-अपना करके जहां राग बनाते हो, वहीं से चांटे खाने को मिलेगा। इसलिए राग न करो केवल कर्त्तव्य करो। जो साथी-बराती हैं उनकी सेवा कर दो और उनसे निष्काम होकर रहो। उनमें चिपके न रहो, नहीं तो उनसे पीड़ा पाओगे।

मैं कह रहा था कि जवानी में क्षिप्त भूमि ज्यादा रहती है और अज्ञान की दशा हो तो कभी भी रह सकती है। क्षिप्त भूमि में रजोगुण का अत्यन्त प्रकाश रहता है। इसमें सत और तम दोनों दबे रहते हैं। इसमें केवल ऐश्वर्य और भोग-वासना की धुआंधार प्रबलता रहती है। इस भूमि में मन में अत्यन्त पागलपन सवार रहता है। दूसरी भूमि है—मूढ़ भूमि। इसमें सत और रज दबे रहते हैं और तम प्रधान रहता है। इसमें कुछ करने का मन नहीं होता है क्योंकि आलस्य और निद्रा का प्रभाव रहता है। विक्षिप्त भूमि में रज और तम दबे रहते हैं लेकिन सत का प्रकाश रहता है। इसमें सतोगुण उभरा रहता है लेकिन बीच-बीच में रजोगुण जोर मारता है। इसलिए इस भूमि में मन की सही दशा नहीं रह पाती है। मन कुछ काल तक सही रहता है लेकिन फिर गड़बड़ करने लगता है क्योंकि मन में रजोगुण का जोर रहता है।

एकाग्र भूमि में सतोगुण का पूर्ण प्रकाश रहता है। रज और तम का इसमें बिलकुल ही प्रभाव नहीं रहता है। इसमें मन ऐसा रहता है कि विचार आन्दोलित नहीं कर पाते हैं और कोई भावना आन्दोलित नहीं कर पाती है। बड़ी से बड़ी घटना भी चित्त को क्षोभित नहीं कर पाती है। इसमें चित्त में बहुत आनन्द रहता है। एकाग्र भूमि बड़ी ऊंची अवस्था है। आदमी जब इस भूमि में रहता है तब वह जैसे साधना में बैठता है वैसे उसका मन एक आधार में टिक जाता है। उस काल में पूरी एकाग्रता रहती है लेकिन व्यवहार का काम भी यदि वह करता है तो उसी में उसका मन लगा रहता है। इधर-उधर का कोई बकवास नहीं सोचता है। एकाग्रता एक ऐसी अद्भुत शक्ति है जो साधना द्वारा प्राप्त होती है और जीवन का परम सुख इसमें रहता है। इसमें पूर्ण सतोगुण का प्रकाश रहता है।

अंतिम निरुद्ध भूमि है जिसमें सतोगुण भी लीन हो जाता है। रजोगुण और तमोगुण तो इसमें रहते ही नहीं हैं, सतोगुण भी इसमें लीन रहता है। इसमें चित्त में पूर्ण विश्राम हो जाता है। कुछ न सोचना ही निरुद्ध भूमि है। एकाग्र भूमि सम्प्रज्ञात समाधि है और निरुद्ध भूमि असम्प्रज्ञात समाधि है। पारख सिद्धान्त के अनुसार कहें तो एकाग्र भूमि द्रष्टा की स्थिति है और निरुद्ध भूमि स्वरूपस्थिति है। द्रष्टा की स्थिति का अर्थ है साक्षी भाव करते रहना, संकल्पों का त्याग करते रहना। अपने आप में सावधान रहना यही सम्प्रज्ञात समाधि है और जब कुछ वृत्ति न उठे तो यही असम्प्रज्ञात समाधि है। योगदर्शन की भाषा में सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो समाधियां कही गयी हैं। सम्प्रज्ञात का अर्थ है अच्छी तरह से जाना हुआ। एक शब्द है 'ज्ञात' और उसी में 'सम्' और 'प्र' उपसर्ग लग जाते हैं तो बन जाता है 'सम्प्रज्ञात'। सम्प्रज्ञात का अर्थ है अच्छी तरह से जाना हुआ। फिर 'सम्प्रज्ञात' में 'अ' उपसर्ग लगाकर 'असम्प्रज्ञात' बनता है जिसका अर्थ है कुछ न जानना। चित्तवृत्ति से हम अपने लक्ष्य को जानते हैं और जब चित्तवृत्ति ही शांत हो जाती है तो कुछ नहीं जानते हैं। तब केवल स्थिति दशा है और वही असम्प्रज्ञात समाधि है। वहां जानने की कोई जरूरत नहीं है।

ये चित्त की पांच भूमियां हैं और इन पांचों भूमियों में कुछ वृत्तियों का निरोध रहता है तो कुछ का प्रकाश रहता है। जैसे कि क्षिप्त भूमि में रजोगुण पूर्ण प्रकाश में रहता है लेकिन सत और तम निरुद्ध रहते हैं। मूढ़ भूमि में तमोगुण एकदम प्रकाशित रहता है लेकिन रज और सत दबे रहते हैं। विक्षिप्त भूमि में सतोगुण प्रकाशित रहता है लेकिन रज तथा तम दबे रहते हैं। इन तीनों को समाधि की कोटि में नहीं माना जाता है। समाधि की कोटि में इनसे आगे की दो स्थितियां—एकाग्र और निरुद्ध—ही मानी जाती हैं। जैसे मान लीजिए कि कोई कामी आदमी है तो स्वाभाविक ही उस समय उसमें क्रोध नहीं रहेगा लेकिन वह कोई ज्ञान की दशा तो नहीं है। कोई आदमी अत्यन्त क्रोध से पागल हो गया है तो उस समय उसमें कामवासना नहीं रह सकती है लेकिन वह कोई ज्ञान की अवस्था तो नहीं है।

क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त ये जो चित्त की तीन भूमियां हैं, इनमें भी कोई न कोई गुण तिरोहित रहता है। सतगुण, रजगुण और तमगुण इन तीनों वृत्तियों में से एक या दो वृत्तियां इन तीन भूमियों में लीन रहती हैं फिर भी वे समाधि की कोटि में मानी नहीं जाती हैं। जैसे क्षिप्त भूमि है उसमें रजोगुण प्रकाशित है और सत और तम दोनों दबे रहते हैं लेकिन वह समाधि की कोटि में नहीं है। मूढ़ दशा में तमोगुण प्रकाशित रहता है जिसके फलस्वरूप आलस्य और निद्रा रहते हैं और सत तथा रज दबे रहते हैं लेकिन यह कोई समाधि नहीं है। विक्षिप्त भूमि में सतोगुण तो प्रकाशित रहता है लेकिन रजोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं। और सतोगुण भी उसमें पूर्णरूप से प्रकाशित नहीं रहता है, दुर्बल रहता है इसलिए इसको भी हम समाधि की कोटि में नहीं रख सकते। समाधि की कोटि में अंतिम दो स्थितियां हैं—एकाग्र और निरुद्ध।

एकाग्र दशा में सतोगुण का पूर्ण प्रकाश रहता है और निरुद्ध दशा में सतोगुण भी लीन हो जाता है और तब केवल शुद्ध चेतना मात्र रहती है। यह मन की यात्रा है। मन बड़ा सूक्ष्म है। मन ही के द्वारा सब कुछ होता है। मन को जिसने ठीक कर लिया उसका जीवन ही बदल गया और मन को जो नहीं ठीक कर पाया वह बह गया।

धन बटोरते-बटोरते जीवन बीत गया। विद्या पढ़ते-पढ़ते जीवन बीत गया। मठ-मंदिर का प्रबंध करते-करते जीवन बीत गया। गृहस्थी संभालते-संभालते जीवन बीत गया लेकिन अगर अपने मन को नहीं संभाले तब क्या लाभ हुआ? अपने मन को पहले संभालना चाहिए। उसके बाद ही यह सब व्यवहार का काम है, और इसे भी संभालना पड़ता है। जहां आदमी रहता है वहां व्यवहार को भी संभालना पड़ता है लेकिन व्यवहार को ही तूल दे देना और अपने मन के महत्व को न समझना अपना बनाया दुर्भाग्य है।

एक घटना याद आती है। एक बड़े महंत दो-तीन वर्षों से मेरे कार्यक्रम के लिए प्रयास में लगे थे। मैंने उनको कार्यक्रम दिया और उन्होंने बड़े समारोहपूर्वक कार्यक्रम किया और खूब खर्च किया। विदाई के दिन वे मुझे अपने कमरे में बैठाये और फिर उन्होंने वर्णन करना शुरू किया कि साहेब, इस मठ के चारों तरफ मठ की बहुत जमीन दबी थी और मैंने मुकदमा लड़-लड़कर इसको ठीक किया और पुनः मठ में लौटाया।

जब काफी देर तक काफी विस्तार से वे वर्णन कर लिये तब मैंने उनसे कहा कि साहेब, क्या आपके मन में शांति है? तब वे कहे कि वह कहां है! तब आगे मैंने और कुछ नहीं कहा क्योंकि वे काफी बुजूर्ग थे। इसलिए उनसे इतना पूछना ही काफी था क्योंकि वे भी समझदार थे, समझ तो गये ही होंगे। समझदार होना अलग बात है और अभ्यास करके आध्यात्मिक काम करना अलग बात है।

आप गृहस्थी संभाले, मठ संभाले, धन संभाले, परिवार संभाले, समाज संभाले लेकिन अपने को नहीं संभाले तो क्या लाभ हुआ? अपने को संभाल लो तो बाहर का सब संभालना बढ़िया होगा। जो ज्ञानवान पुरुष है, वैराग्यवान पुरुष है, समाधिनिष्ठ पुरुष है, उसका व्यवहार अव्यवस्थित नहीं होता किंतु व्यवस्थित होता है।

वह जहां जो कुछ करता है दिलोजान से करता है और समर्पित होकर करता है।

जीवन में उन्नति का साधन समर्पण है और समर्पण में कुछ बचता नहीं है। कुछ बचाकर समर्पण नहीं होता है। समर्पण जब होता है तो पूरा होता है। आधा-अधूरा समर्पण नहीं होता है। जिस काम में जो पूरा समर्पित हो गया, क्या वह अपने को कुछ बचाये रखेगा। जब धान की रोपाई होती है, निराई होती है तब किसान अपने कपड़े को बचा-बचाकर निराई, रोपाई करे और सोचे कि कपड़े में दाग न लगे तो वह किसानी क्या करेगा? यह ठीक है कि वह जब काम को छोड़ दे और स्नान कर ले तो फिर साफ कपड़ा पहन ले लेकिन धान की रोपाई-निंदाई या गोबर-माटी का काम करना है तो अपने को बचाये रखकर करेगा तब वह क्या करेगा? उसे तो उसमें कूद पड़ना चाहिए और जमकर काम करना चाहिए। जमकर करेंगे तब खेती होगी और तब कोई काम होगा।

मेरी आपको सलाह है कि जब किसी काम को करने में आप लगो तो पूरा समर्पित होकर लगो और करो। समर्पित होकर करोगे तो चित्त में शांति रहेगी। और अगर अधूरे मन से करोगे तो चंचल रहोगे और सफलता भी बढ़िया न होगी। इसलिए यह मान लेना कि जो समाधि में जायेगा, जो शांति को पा जायेगा वह व्यवहार में अनाड़ी हो जायेगा या वह व्यवहार को अव्यवस्थित कर देगा, यह बात मेरी समझ में कभी नहीं आती।

जो जितना समाधि में जायेगा, ध्यान में जायेगा और जिसका चित्त जितना स्ववश होगा, उसका व्यवहार उतना ही बढ़िया होगा। मन ही से तो कुल होता है। तथागत बुद्ध कहते हैं—

मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं'व वहतो पदं।

मन सभी धर्मों और कर्मों में आगे है। मन श्रेष्ठ है और सारे कर्म मनोमय हैं। जो मन में प्रदुष्ट भावना रखकर, खराब भावना रखकर बोलता और काम करता है उसके पीछे दुख वैसे चलते हैं जैसे बैलगाड़ी में नधे हुए बैलों के पैरों के पीछे उसके चक्के चलते हैं। वैसे ही दुख मनुष्य के पीछे चलते हैं। लेकिन—

मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा।
ततो नं सुखमन्वेति छाया' व अनपायिनी।

जो प्रसन्न मनवाला होकर बोलता और काम करता है उसके पीछे-पीछे अनपायिनी शांति, स्थिर शांति चलती है, जैसे इंसान की छाया उसके पीछे-पीछे चलती है। साहेब ने कहा है—

मूल गहे ते काम है, तैं मत भरम भुलाव।
मन सायर मनसा लहरि, बहे कतहु मति जाव॥

साहेब कहते हैं कि—मूल पकड़ने से काम बनेगा। तुम कहीं भरमो-भटको मत। मन समुद्र है और इच्छाएं तरंगे हैं। उसमें बहकर कहीं तुम मत जाओ।

मन मूल है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:"—मनुष्य के बन्ध-मोक्ष का कारण मन है। उत्तम मानव जीवन मिला है इसी में मन को समझा जा सकता है और इसी में मन को सुधारा जा सकता है लेकिन इसी में आदमी इतना खुराफाती हो जाता है और सुबह से शाम तक ऐसा उलटा-चाल करता है कि उसका मन कांटों से भर जाता है।

खजूर का पेड़ तो आप देखे होंगे, उसके तना में नीचे से ऊपर तक कांटे ही कांटे, खूंटी ही खूंटी रहती हैं। ऐसे ही आदमी भी हो गया है। वह ऐसा कर्म करता है जो उसके जीवन में कांटे ही कांटे बनाता चला जाता है और वही कांटे उसको चुभ-चुभकर दुख देते रहते हैं। मन को सरल, संयत, विनम्र, स्वच्छ बनाना ही जीवन की प्राथमिकता है और यही जीवन की सफलता है। इसी के द्वारा आदमी अपने जीवन की उच्च अवस्था में पहुंचता है। उच्च अवस्था है दुखहीन अवस्था।

आप जीवन में सारा प्रपंच किसलिए करते हैं? दुख दूर करने के लिए करते हैं लेकिन बुद्धि उल्टी हो जाने से जो कुछ आप करते हैं उससे दुख और बढ़ता चला जाता है। लोगों में यदि सही समझ नहीं है, भोगों की

लालसा और अहंता-ममता है तो इससे दुख और बढ़ेगा। भोगों में जितनी लालसा होगी, प्राणी-पदार्थों में जितनी अहंता-ममता होगी, उतनी ही तकलीफ बढ़ेगी।

आप सब पर अपना अधिकार मानते हैं लेकिन किसपर आपका अधिकार है? आप अपने पुत्र पर अपना अधिकार मानते हैं, लेकिन किसलिए? क्या अपने शरीर से उसको पैदा कर लिये हो इसीलिए? अरे, आप होश में आओ और वे जब तक छोटे-छोटे हैं तब तक उनको खेला लो। तब तक उनको चूम-चाट लो। जब वे जवान हो जायेंगे तो तुम्हारी परवाह नहीं करेंगे। तब उनका अपना भ्रमपूर्ण स्वार्थ होगा और उस भ्रम में भ्रमित होकर पता नहीं वे क्या-क्या और कितना-कितना करेंगे। बाकी और भी जितने सम्बन्ध हैं उन सब सम्बन्धों की भी दशा यही है। इसलिए आदमी अपना पूरा जीवन भ्रम में ही जीता है।

जीवन में सबसे बड़ा भ्रम है संसार से सुख पाने की लालसा। इसी भ्रम के पीछे ममता, अहंकार, तृष्णा, मोह सब चलते हैं। इस पर्दे को जिसने फाड़ दिया उसी की बहादुरी है, लेकिन इस पर्दे को भी फाड़ना सहज नहीं है क्योंकि यह तुरन्त फटता नहीं है। वह फटेगा तब जब समझ में आये, फिर अभ्यास करे, फिर ऐसे सद्गुरु-संतों की शरण में जाये और उनसे धीरे-धीरे सीखे-समझे और करे तब यह काम बनेगा। पहले तो समझ में ही नहीं आता है तब फटे कैसे।

संसारी आदमी के मन में होता है कि संसार के विषय-भोग को छोड़ कैसे दिया जाये क्योंकि यही विषय-भोग तो जीवन का सार है। मैथुन जीवन का सबसे बड़ा सुख है और क्या इसको छोड़ दिया जाये? लेकिन आदमी की समझ में नहीं आता है कि यही सबसे बड़ा कांटा है। इसी के पीछे सारे कांटे पैदा होते हैं जो गड़ते हैं और दुख होता है। यह विचार करना चाहिए कि गृहस्थी क्या दुख भोगने के लिए ही है? दुख भोगने के लिए गृहस्थी नहीं है। इसलिए गृहस्थों को भी बहुत संयम से रहने की जरूरत है। जो विरक्त हैं उनको तो एकदम संयम से रहना ही है लेकिन गृहस्थों को भी एकदम संयम से रहने की जरूरत है। इसलिए अपने को संभालो। मन को संभालना अपने को संभालना है। यह मन बहुत ही संवेदनशील है और इसी में उलझकर सारा संसार रो रहा है। इसी मन को जो साफ और संयत कर लेता है, यही मन जिसके वश में हो जाता है, उसका काम बन जाता है।

ये गुणवन्ती बेलरी, तव गुण बर्णि न जाय।
जर काटे ते हरियरी, सींचे ते कुम्हिलाय॥

साहेब कहते हैं कि ऐ गुणवन्ती बेलरी! तेरे गुण का वर्णन नहीं किया जा सकता। तेरी बड़ी विशेषता है क्योंकि तेरी जड़ जब काट दी जाती है तब तू हरी-भरी हो जाती है और जब तू सींची जाती है तब तू कुम्हला जाती है। साहेब की वाणियों में कैसी-कैसी बुझौवल है। यह भी एक बुझौवल है। गुणवन्ती बेलरी हमारी मनोवृत्ति है। मनुष्य के मन की वृत्ति ही मनोवृत्ति है। मन जो सामने है, जिससे हम सोचते हैं यही मनोवृत्ति है।

वृत्ति का मतलब होता है घेरा, लपेट। जैसे तालाब में हमने एक पत्थर फेंका तो पानी में जहां पत्थर गिरता है वहां का पानी दब जाता है और वहां का पानी दबने से उसके आगे के पानी का अगला हिस्सा उठ जाता है। लेकिन जो पानी उठा वह उठा ही तो नहीं रहेगा, गिरेगा और जब गिरेगा तब उसके दबाव से पानी का अगला हिस्सा उठ जायेगा। तो उठने और दबने की यह क्रिया बड़ी तेजी से होती चली जाती है। इसी प्रक्रिया को हम तरंग कहते हैं। तरंग का मतलब यह नहीं है कि इस तरफ का पानी उस तरफ चला जाता है। पानी का अगला हिस्सा दबता है और उसका पिछला हिस्सा उठता है। यही तरंग है और ऐसे ही चित्तवृत्ति या मन की बात है। चित्त ही मन है और वृत्ति उसकी लपेट है। मन की एक-एक कड़ी उसकी वृत्ति है।

दो आदमियों के प्रेम की बात याद आयी तो यह एक वृत्ति हो गयी। सड़क की याद आयी तो दूसरी वृत्ति हो गयी। बैल की याद आयी तो तीसरी वृत्ति हो गयी। दो आदमियों के विवाद की बात याद आयी तो चौथी

वृत्ति हो गयी। चित्त में वृत्ति बनती रहती है, एक लपेट बनता रहता है, उसका एक घेरा बनता रहता है। वही चित्तवृत्ति है। चित्त की वृत्तियों को शांत कर देना समाधि का अभ्यास है। "ऐ गुणवन्ती बेलरी, तव गुण बर्णि न जाय" यही चित्तवृत्ति गुणवन्ती बेलरी है। साहेब कहते हैं कि तेरी मैं क्या प्रशंसा करूं। अगर तेरी जड़ काट दी जाती है तो तू हरी-भरी हो जाती है। सींचता हूं तो तू कुम्हलाने लगती है।

इस मनोभूमि की जड़ है राग, मोह और आसक्ति। इसको काट दो तब यह हरी-भरी हो जायेगी। फिर जीवन में आनन्द-आनन्द हो जायेगा और अगर इसको मोह-माया से सींचो, विषय-वासना से सींचो तो यह कुम्हला जायेगी अर्थात मन हरदम पीड़ित-पीड़ित रहने लगेगा। जिस क्षण सब तरफ से आपका मोह कटा रहता है उस क्षण आप बिलकुल हलके-फुलके रहते हैं लेकिन जब मोह रहता है तब पीड़ित रहते हैं। अगर अपनी मनोवृत्ति को विषयवासना से सींचो तो यह कुम्हलाती है। जितनी विषय-वासना रहेगी उतना चित्त क्षुब्ध और उद्वेगित रहता है तथा उतना ही पीड़ित रहता है। यही चित्तवृत्ति का कुम्हलाना है।

जब आदमी दुखी होता है तब यह समझता है कि दुख एक सच है। क्योंकि वह मोह की अवस्था में रहता है और ऐसी अवस्था में दुख न होगा तब और क्या होगा। कुछ लोग दूसरे के लिए कहते हैं कि "अरे, जब उनके ऊपर आवे तब उनको पता चले।" मैंने एक महंत को देखा कि वे दूसरे से बहुत क्षुब्ध हो गये थे तो मैंने उनसे कहा कि संत का लक्षण क्या है—क्षुब्ध न होना। तब उन्होंने मुझसे कहा कि—"आपके ऊपर आता तब पता लगता।" अब किसी के ऊपर क्या आयेगा? विवेक के ऊपर कुछ नहीं आता है। क्या इस दुनिया में कोई नयी चीज आनेवाली है?

आजतक हमारे जीवन में नया क्या हुआ है? अपमान हुआ है, सम्मान हुआ है, प्रियजनों की मौत हुई है, उनका बिछुड़न हुआ है। अप्रिय लोगों का संयोग हुआ है और प्रिय का वियोग हुआ है। लाभ हुआ है और घाटा हुआ है, संयोग हुआ है और वियोग हुआ है। शरीर में रोग हुआ है और आरोग्य हुआ है, सब चीजों की अनुकूलता हुई है और प्रतिकूलता भी हुई है। यही सब हुआ है और यही आगे भी होगा। नयी चीज क्या होगी? क्यों भयभीत होते हो?

नयी चीज तो एक ही है और वह है—चित्त स्ववश हो जाये। चित्त का निर्मल होना और चित्त में शांति होना ही नयी चीज है। साहेब कहते हैं—"ऊठत बैठत कबहुं न छूटे ऐसी तारी लागी।" ऐसी तारी लगे, ऐसा ध्यान लगे कि उठते-बैठते कभी न छूटे। जीवन पूरा आनन्दमय हो जाये। जीवन पूरा मुक्तिमय हो जाये। यही नयी चीज है और यही नयी बात है। इसके अलावा नयी बात दुनिया में और कुछ नहीं है। वही कीड़े-मकोड़े हैं, वही आदमी हैं, वही कूड़ा-कचरा है। वही सब कुछ है और जो सदा से होता आया है वही आगे भी होगा।

बड़े पद पर चले जाओ तो एक दिन उसपर से उतर जाओगे। ऐसे-ऐसे सेवानिवृत्त लोग मेरे पास आते हैं जो बड़े-बड़े पदों पर रहे हैं। एक व्यक्ति तो ऐसे पद पर रहकर रिटायर हुए हैं जिस पद पर पूरे भारत में केवल कुछ ही आफिसर होते हैं। वे अपने सेवाकाल में भी मुझसे मिले और वहां से सेवानिवृत्त हो गये तब भी मिले। और वे अपने चित्त की दयनीय दशा में भी मिले और अपना अनुभव बताते हुए कहे कि साहेब, लगता है कि वह सब कुछ नहीं था। यह बात ठीक है कि वह भी एक सेवा है लेकिन लोग जो मानते हैं कि उससे ऐश्वर्य मिलता है वह एक भ्रम है। कुछ ऐश्वर्य नहीं मिलता है। सबसे बड़ा ऐश्वर्य है चित्त की निर्मलता। बाहर का जितना ऐश्वर्य है वह सब दिखावा है। बाहर के ऐश्वर्य में यदि सावधान न रहो तो विकार आ जायेगा। धन बढ़ेगा, जन बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी लेकिन साधना यदि ढीली हो जायेगी तो ये सब के सब ऐश्वर्य नरक कर देंगे। अहंता और ममता बढ़ जायेंगी और अन्यथा सोचना शुरू हो जायेगा, अन्यथा बोलना शुरू हो जायेगा, अन्यथा बरतना शुरू हो जायेगा और अपने मन, वाणी और कर्मों के प्रपंच बढ़ जायेंगे और वही प्रपंच कांटे बन जायेंगे।

हम मानेंगे कि हम उन्नत हो गये हैं और इस जोश में हम रहेंगे लेकिन जोश में कुछ होश तो रहता नहीं है। पद मिला, प्रतिष्ठा मिली, जवानी मिली और अनुकूलता मिली, इन सबका शराब पीकर हमें होश-हवाश कहां है? कोई बिरला ही इनसे परे की बात को देखता है।

"अंधभूतोऽयम् लोको तनुकेत विपश्यति" यह तथागत बुद्ध ने कहा है। यह संसार तो अंधभूत है, महा अंधा है। बहुत थोड़े लोग ही देखते हैं। सब तो अंधे हैं। दुनिया की अहंता-ममता में पड़ना अंधापन है। अहंता और ममता को ढील कर देना यह आंख के खुलने का लक्षण है। अहंता और ममता का पूर्ण विलय हो जाना पूर्ण जागृत अवस्था है। साहेब ने भी कहा है—"संतो जागत नींद न कीजै। काल न खाय कल्प नहिं ब्यापै, देह जरा नहिं छीजै॥"

सब लोग अपने मन में ही उलझे हैं। दूसरा कोई उनको उलझाया नहीं है। हम अहंता और ममता बनाकर स्वयं उलझे हैं। हम स्वयं ही अपने मन को कांटेदार बना लिये हैं। इसमें हमारा ही दोष है, किसी दूसरे का दोष नहीं है। किसी ईश्वर, किसी भगवान और किसी शैतान ने हमें उलझा दिया है—यह सोचना भयंकर भूल है। हमने ही अपने को उलझाया है और हमें ही अपने को जगाना और छुड़ाना है। हमें कोई दूसरा छुड़ा नहीं सकता। संत-गुरु आधार हैं। उनके बिना कुछ होगा नहीं। मैं तो जब याद करता हूं कि यदि मुझे मेरे गुरुदेव और ये संत न मिले होते तो पता नहीं मैं बहकर कहां गया होता। तब मेरे मन की जो स्थिति आज है, यह कहां मिलती! अगर ये संत-गुरु न मिले होते तो दूसरों की जो सेवा मैं कर पा रहा हूं, वह भी मैं न कर पाता। यह तो अच्छा हुआ कि सद्गुरु मिले, संत मिले, मुझे शरण दिये। उनकी शरण में रहकर मैंने सीखा-समझा और अपना कल्याण किया और अभी भी मैं संतों के साथ ही हूं। "संत-गुरु आधार और न रक्षक कोइ किते" संत-गुरु ही आधार है। उपास्य के जितने आलम्बन हैं उनमें संत और गुरु ही प्रमुख हैं, बाकी उपासनाएं तो एक चटुआ की तरह हैं।

मूर्ति की पूजा, चित्र की पूजा, किसी देवी-देवता की मूर्ति की कल्पना करके उसकी पूजा, ये सब तो एक चटुआ की तरह है। इससे थोड़ा मानसिक संतोष हो जाता है बस। पूर्ण संतोष और पूर्ण बोध नहीं हो पाता। जहां से बोध होने वाला है वह तो गुरु-संत हैं और वे साधक हैं, जो सन्मार्ग में लगे हैं। संत, गुरु और साधकों के द्वारा ही हमें साधना का गुर मिल सकता है और उनके द्वारा ही हमें बोध प्राप्त करने के लिए साहस और आदर्श मिल सकता है।

कोई वकील हैं तो उनके द्वारा ही वकालत का प्रशिक्षण और वकालत का अभ्यास हमें मिल सकता है। कोई डाक्टर हैं तो उनके द्वारा डाक्टरी हम सीख सकते हैं। इसी प्रकार कोई कृतार्थ आत्मा पुरुष है या उस दिशा में जो कोई प्रगतिशील है, उसके द्वारा हमें वह रास्ता मिल सकता है, किसी दूसरे के द्वारा नहीं मिल सकता है लेकिन अंत में तो करना पड़ेगा खुद को ही।

संतों से बल बहुत मिलता है। रहनी सम्पन्न संतों को केवल देखकर ही अपने जीवन में इतना प्रभाव पड़ता है कि अपना आधा काम बन जाता है। इतने ही से अपनी मेहनत आधी कम हो जाती है परन्तु अंततः करना पड़ता है खुद ही को। अपना ही यदि लापरवाह होंगे तब संत क्या कर लेंगे? अपना लापरवाह बनोगे तो काम न बनेगा। बड़े-बड़े संतों के पास भी कुछ ऐसे लोग रहे हैं जो उनसे कुछ ले नहीं सके हैं। यह इतिहाससिद्ध बात है और मेरे नजरों के सामने की बात है। यह पुराना इतिहास है, कितने लोग जीवन्मुक्त संतों के पास रहे, लेकिन उनसे कुछ ले नहीं सके बल्कि उन्हीं के विरोध में पड़ गये।

सबसे पुराना इतिहास तथागत बुद्ध का है। देवदत्त उनका एक शिष्य था जो उनसे लिया तो कुछ नहीं, उल्टे उनके विरोध में पड़ गया और यहां तक पड़ा कि उनके शरीर को भी छिन्न करने के चक्कर में पड़ गया। बुद्ध तो जैसे थे वैसे ही रह गये थे लेकिन देवदत्त पस्त हो गया। ऐसे ही हर जगह की बात है। संत ईसा के बारह शिष्य जो उनके साथ-साथ रहते थे, उन्हीं में से एक

शिष्य ने तीस रुपये के लोभ में ईसा को दुश्मनों के हाथ में पकड़ा दिया था। फिर अंत में उसे भी बड़ी पीड़ा हुई और वह बहुत रोया। उस रुपये को ले जाकर उसने मंदिर में फेंक दिया। मंदिरवालों ने भी उस रुपये को नहीं लिया किंतु उससे एक जमीन खरीद दी जिसमें जो विदेशी आयें और मर जायें उनको दफना दिया जाये। कहते हैं आज भी वह जमीन है। तो अच्छे संतों के पास में रहनेवाले भी ऐसे कुछ लोग हुए हैं और आज भी हैं जो उनसे कुछ लेते नहीं हैं किन्तु दैहिक स्वार्थ एवं लौकिक स्वार्थ के लिए समय आने पर बिलकुल उनसे उल्टे हो जाते हैं। किसी से जब आप नहीं लेंगे तब आपका क्या लाभ होगा लेकिन यह भी ध्यान रखें कि महापुरुषों के साथ ऐसा भी होता है कि उनके ही शरण में रहनेवाले कितने शिष्य अपनी अज्ञानता के कारण उनके विरोधी हो जाते हैं।

जो कल्याणार्थी है वह संतों से लेता है और भक्तों से भी ले लेता है। जो भक्त हैं, साधक हैं, समझदार हैं उनसे भी वह ग्रहण करता है। लेने का एक स्वभाव होता है और जिसका ऐसा स्वभाव होता है वह तो जो साधक नहीं हैं उनकी त्रुटियों से भी प्रेरणा ले लेता है। किसी की त्रुटि को वह देखता है तो समझ लेता है कि ऐसा यदि मैं भी करूंगा तो मेरी भी ऐसी दशा होगी। एक शराबी आदमी जो शराब के नशे में धुत्त होकर नाली में पड़ा है उससे भी सच्चे साधक निर्देश ले लेते हैं कि यह दशा जिसकी होगी खराब होगी। ऐसी दशा में नहीं जाना चाहिए। इसलिए संत, गुरु और भक्त-सज्जन आधार हैं। उनके ही आधार में बोध होगा, रास्ता मिलेगा, लेकिन करना खुद ही पड़ेगा।

हम लोगों के पास मन है और इस मन को छोड़कर समस्या और कुछ नहीं है। समस्या न तो लड़का है न लड़की है, न पति है न पत्नी है और न घाटा है न मुनाफा है। समस्या केवल हमारा मन है। घाटा जब हो ही गया तो उसमें रोने से क्या समस्या का समाधान होगा? घाटा हो गया तो हो गया। घाटा होने पर भी खाने को मिलेगा। प्रयास करो घाटा मुनाफा में बदलेगा। और मुनाफा हो गया तो बहुत फूलने की क्या जरूरत है? मुनाफा हो गया तो चार-चार कुन्तल तो खाओगे नहीं बल्कि उतना ही खाओगे जितना सामान्य दिनों में खाते आ रहे हो और जितना एक सामान्य आदमी खाता है। तुम्हारे पास चीजें हैं तो उनको सन्मार्ग में व्यय करो और हर समय विवेक जाग्रत रखो क्योंकि हर स्थिति में विवेकवान को क्षोभ नहीं होता है।

समस्या है हमारा अविवेकी मन। अपना मन कूड़ा-कचरा से भरा है तो वह एक समस्या है। अविवेकी मन समझ नहीं पाता है और गलत सोचता है और अन्दर-अन्दर जलता रहता है। उसे विश्राम नहीं मिलता है। आपके घर में कोई ऐसा आदमी है जो ठीक-ठाक नहीं है तो अब उसको लेकर समस्या न बनाओ। समझो कि उसपर अपना कोई अधिकार नहीं है उसको लेकर आन्दोलित मत हो। उसका हित चिंतन करो। उसको राय दे दो, वह जो समझ पायेगा, करेगा। उसके विषय में सोच-सोचकर और अपने को दुखाकर तो और कमजोर बन जाओगे।

चीजें घट गयी हैं तो घट जाने दो। पुरुषार्थ करो वे फिर हो जायेंगी। मन को सदैव बुलन्द रखो और सदैव आशावान रहो। निराश कभी नहीं होना चाहिए। भोगों में सुख की कभी आशा न रखो। हमेशा उन्नति की आशा रखो। जिस काम को हम करते हैं, उसमें हम उन्नत होंगे, उसमें हम आगे बढ़ेंगे यह आशा रखो। आशा और निराशा तो एक अलग विचार का विषय है इस पर फिर समय से विचार किया जायेगा।

अपने मार्ग में इतना आशावान होना चाहिए कि दूसरे साधक जब साधना में आगे बढ़ जाते हैं तो हम आगे क्यों न बढ़ेंगे। दूसरे विद्यार्थी ठीक से पढ़ लेते हैं तो हम क्यों न पढ़ लेंगे। डाक्टर और वकील आदि बहुत-से लोग हैं जो निपुण हैं तो हम उनके समान निपुण क्यों नहीं हो सकते हैं। अपने मार्ग में हमें आशावान होना चाहिए लेकिन यहां प्रसंग अध्यात्म का है इसलिए अध्यात्म की बात की जा रही है। मन की निर्मलता हो जाने पर सारी समस्या का समाधान निकल

आता है और यह पक्का समझ लो कि मन पूरा का पूरा निर्मल होता है, एकाग्र होता है और निरुद्ध भी होता है। कितने लोगों को तो यह विश्वास ही नहीं होता है कि मन भी शुद्ध होता है।

एक महात्मा जिनकी उम्र पैंसठ से कम नहीं रही होगी, वे आश्रम में आये। भोजन का समय था इसलिए मैंने उनसे कहा कि जाइये, पहले भोजन कीजिए। वे भोजन किये। भोजन करके आये और मेरे पास बैठे तो मैंने उनसे पूछा कि महाराज, आपकी साधना कैसे चल रही है? तो उन्होंने कहा कि साहेब, "साधना क्या है। साधना करना तो ठीक ही है लेकिन मन तो रुकनेवाला है नहीं और उसके पीछे परेशान होने की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि मन तो न कभी निर्विकार होता है और न हो सकता है।"

मैं उनको सुनता रहा, जब वे थोड़ा शांत हुए तो मैंने उनसे कहा कि मन निर्मल भी होता है, एकाग्र भी होता है, निरुद्ध भी होता है और पूरा शांत होता है। लेकिन मेरी यह बात उनको बैठी नहीं। बैठे भी कैसे क्योंकि वे न तो ऐसी संगति किये, न ऐसी साधना किये जिससे मन निरुद्ध हो सके। वे थोड़ा-मोड़ा अभ्यास किये और देखे कि मन नहीं ठहर रहा है तो सिद्धान्त बना लिये कि मन तो रुकता नहीं है। जैसे फ्रायड साहेब ने सिद्धान्त बना लिया कि मनुष्य का सारा व्यवहार काममय है।

फ्रायड साहब ने कहा है कि मां अगर बच्चे को प्यार करती है, चूमती है तो उसके मूल में उसके मन में काम है। बच्चा अपनी मां के सीने से चिपका हुआ दूध पीता है तो उसके मन में सूक्ष्म काम है। इसप्रकार हर जगह उन्होंने काम को ही देखा क्योंकि जो उस मनोवृत्ति के अपराधी लोग थे, उन्हीं की चिकित्सा वे करते थे और उसी चिकित्सा के चक्कर में उन्होंने वैसा सिद्धान्त बना लिया। निरोग मन के लोग उनके पास गये नहीं और निरोग व्यक्ति को फ्रायड के पास जाने की जरूरत भी क्या थी। फ्रायड एक मनोचिकित्सक थे। उन्होंने एक गलत सिद्धान्त बना लिया और पूरी दुनिया में उसकी पढ़ाई चल पड़ी। फ्रायड दुनिया के एक महान विचारक हुए हैं लेकिन उनके विचारों में यह एक उथला और छिछला विचार है। फिर भी उसमें मनोविज्ञान की गहराई है और उनमें अच्छी बातें भी हैं किंतु वे भूले भी बहुत हैं।

पिछले शतक में अर्थात बीसवीं शताब्दी में तीन विषयों का बड़ा जोर रहा है। लैमार्क तथा डारविन का विकासवाद, फ्रायड का मनोविज्ञान और मार्क्स का समाजवाद। इन तीनों का काफी खण्डन भी हुआ है। विकासवाद तो पूरा बकवास है। मनोविज्ञान की बात में बहुत कुछ सार्थकता है और बहुत कुछ निरर्थकता भी। ऐसे ही समाजवाद में भी है। समाजवाद का जो मूल सिद्धान्त है वह बिलकुल सही है। उसके अनुसार हर मनुष्य, मनुष्य है, कोई छोटा-बड़ा नहीं है। सबको समान अधिकर है। सबके खाने-पीने के लिए सामग्री होनी चाहिए। सबके लिए बराबर का काम-धन्धा होना चाहिए। ऊंच-नीच की भावना नहीं होनी चाहिए। सभी लोग मिल-बांटकर खायें और काम करें। यह समाजवाद बहुत जरूरी है लेकिन उसमें और त्रुटियां आती हैं जो गलत है।

सिद्धान्तों में त्रुटियां तो आ ही जाती हैं लेकिन बीच में उनमें जो प्रलोभन आ जाता है वह बड़ी समस्या पैदा करता है। जो जबर्दस्त लोग हैं वे प्रलोभन में पड़कर नहीं चाहते हैं कि हम समता में जीएं। वे चाहते हैं कि हम ज्यादा हक लें और इसी में सब बिगड़ता है।

मैं फ्रायड की बात कर रहा था। उन्होंने काम ही को मनोविज्ञान में हर जगह देखा। वे कहते हैं कि सब काममय है! सब काममय! काम की दृष्टि से ही उन्होंने सब कुछ देखा। अब आजकल उसकी पढ़ाई चलती है। बच्चों पर उसका प्रभाव पड़ जाता है और वे समझ लेते हैं कि जीवन काममय है।

जीव अनादिकाल से विषयाध्यासी है ही और आसक्ति के वश है। इसलिए उसी की वासना उसमें बनी है और इसीलिए निष्कामता की बात उसकी समझ में आती नहीं है। वह यह समझ नहीं पाता है कि मन भी वश में होता है। लेकिन जब साधक सद्गुरु-संतों की शरण ले, अध्ययन करे, ध्यान करे, चिंतन करे, मनन

करे, अभ्यास करे तो जरूर उसका मन वश में होगा। इसमें दीर्घकाल का समय लग सकता है लेकिन विकार कटेंगे और कटते-कटते चित्त में परिवर्तन आयेगा। तब समझ में आना शुरू होगा और समझ में आते-आते ही कभी पूरा पर्दाफास होगा।

हम अपने मन को ही समझदारी का मापदण्ड मान लेते हैं और यही बहुत बड़ी गलती होती है। साहेब ने कहा है—"परखत खरी परखावत खोटी"। अपने परखने पर बात खरी लगती है लेकिन जब वही बात विवेकवान से परखाई जाती है तब खोटी ठहर जाती है। कई बार तो व्यवहार में भी जब हम किसी साधारण बात को लेते हैं तो कहते हैं कि "यह ऐसे ही होगा और इसके विपरीत नहीं होगा" लेकिन दो घंटे बाद ही समझ में आता है कि "नहीं, यह बात बिलकुल ऐसे ठीक नहीं है बल्कि सुधार करके ऐसा करना अच्छा है।" इसलिए विवेकवान बोली भी बोलता है तो जोर से नहीं बोलता है किंतु संभालकर बोलता है।

किसी को भी अहंकारी नहीं होना चाहिए। जो बड़ा है वह भी तो वैसे ही एक मनुष्य है जैसे एक सामान्य मनुष्य है। वह भी यदि गलत करे तो उसे टोका जाना चाहिए और उसको भी सावधान होकर चलना चाहिए। यह मनुष्य शरीर बड़ा उत्तम है। इसमें आकर कल्याण करना चाहिए। फिर आपकी समझ में जो आये वैसा आप करें।

मैंने शुरू में कहा था कि सब लोग अपने-अपने मन को कांटेदार, झाड़ीदार जंगल बना लिये हैं और उसी में उलझ-उलझकर सब परेशान हैं। उसमें लेना-देना कुछ नहीं है। मन में जो नाना इच्छाएं, वासनाएं और चाहनाएं हैं वे ही कांटा हैं और वही आदमी को उलझाये रहती हैं। इसलिए उनका निराकरण करके निश्चिंत रहना है।

आप हैं और आपका परिवार चल रहा है लेकिन आप यह भी जान लीजिए कि आप नहीं रहेंगे तो भी परिवार चलेगा। सब कुछ अनादि काल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। यह आटोमेटिक यंत्र भला कब रुकने वाला है। यह प्रकृति भोजन का अक्षय भंडार है। प्रकृति न तो चूक गयी है और न कभी चूकनेवाली है। यह प्रकृति कभी खत्म होनेवाली नहीं है। इसमें रहनेवाले सब खाते-जीते रहेंगे। अपने मन की चिंता और फिक्र को दूर करो, सेवा करो और अपने मन को संभालने की चेष्टा करो। जीवन की यही सबसे बड़ी बात है। सुबह, शाम और मध्याह्न सब समय सावधान रहो। ऐसा न सोचो, ऐसा न बोलो, ऐसा न करो, जिससे मन उलझ जाये बल्कि ऐसा सोचो, ऐसा बोलो और ऐसा करो कि जिससे मन सुलझे और जिससे मन में शांति आये।

आप किसी में थोड़ी-सी त्रुटि देखे कि बस, उद्वेगित हो गये, पीड़ित हो गये और उल्टा-पल्टा कहकर दूसरे को क्षुब्ध किये और अपना भी क्षुब्ध हुए तो क्या पाये? दूसरे के हित की बात तो कहते हो और अपना खुद ही अहित में लग गये हो। इसलिए शांत रहो, सरल रहो। भूल तो सबसे होती है। कौन देहधारी है जो कहेगा कि मुझसे भूल नहीं होती है। अगर किसी से भूल हो गयी है तो उसकी भूल को सुधारकर उसे रास्ते में लगाओ लेकिन जो भूल के लिए ही कमर कसे है उसको तो दूर से ही दण्डवत कर लेना ठीक है। जो समर्पित भाववाला है उनसे भी भूल होती है। उसको भी साथ में लेकर चलने की जरूरत है। उससे उलझने की जरूरत नहीं है।

कुल मिलाकर कहा जाये तो मन को संभालना बहुत जरूरी है। उसी मन को संभालने के लिए ध्यानाभ्यास है। ध्यानाभ्यास में जो साधक लगेगा तो धीरे-धीरे काम बनेगा। पहले तो अपने मन से लड़ाई करेगा। फिर धीरे-धीरे कुछ रुकेगा। कभी एक क्षण के लिए एकदम उसका मन रुक जायेगा तो उसे बड़ा आनन्द आ जायेगा और उस लाभ को लेकर वह आगे और सावधान होगा तथा और अभ्यास करेगा। इस प्रकार करते-करते आगे बढ़ेगा।

जो जितना काम करेगा उतनी सफलता उसको होगी। यह भी बात है कि साधकों में योग्यता का भी अन्तर रहता है। किसी साधक में रजोगुण की वृत्ति अगर

बहुत जोर से है तो उसको सफलता धीरे-धीरे होगी और जो साधक सतोगुणी वृत्तिवाला है तो उसको जल्दी सफलता होगी। किसी भी साधक को निराश नहीं होना चाहिए। करते रहने से समय से सफलता होगी। इतना पक्का समझ लो कि अध्यात्म के क्षेत्र की जितनी बातें हैं वे सब सेवा, स्वाध्याय और साधना इन तीन में आ जाती हैं।

सेवा परमावश्यक है। उसके बिना तो कुछ हो नहीं सकता। सेवा के बिना तो चित्त ही शुद्ध नहीं होगा। देखो यहां सेवा हुई है तब यह रंगा-पुता भवन हमलोगों को बैठने के लिए उपलब्ध हो पाया है। सेवा हुई है तब यहां ये साफ-सुथरे बिछौने और प्रकाश की व्यवस्था हो पायी है। सेवा हुई है तभी यहां पंखे चल रहे हैं। ये सब सेवा के आधार पर है। यह सब ऐसे ही नहीं उपलब्ध हो गया है। जिसमें हम लोग सत्संग और ध्यान का लाभ ले रहे हैं यह सब सेवा से सम्भव हो पाया है। हम जो कपड़े पहने हैं तो इन्हें किसी ने बीना होगा। किसी ने कपास को धुना होगा, सूत बनाया होगा फिर सूत से कपड़ा बनाया होगा। तब तो कपड़ा हमें पहनने को मिला है। सेवा के बिना कुछ नहीं होने वाला है। इसलिए सेवा में समर्पित रहो।

सेवा के बाद महत्वपूर्ण बात है स्वाध्याय। सद्ग्रंथों का अध्ययन करो और अपने आप का अध्ययन करो यानी आत्मचिंतन करो, अपने गुण-दोषों का चिंतन करो और दोषों का परित्याग करो। सद्ग्रंथों का अध्ययन और आत्मचिंतन-स्वाध्याय के ये दो अर्थ हैं। स्व+अध्ययन अर्थात अपने आप का अध्ययन करो, अपने गुण-दोषों पर विचार करो और सद्ग्रंथों का मनन-चिंतन करो। तीसरी और अंतिम बात है साधना। मन को एकाग्र करने का अभ्यास ही साधना है और इन तीनों में अध्यात्म की सब बातें आ जाती हैं। इसप्रकार जो साधक पूर्ण समर्पित होकर इसमें लगेगा वह धीरे-धीरे आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ता चला जायेगा। आप भी पूर्ण समर्पित होकर इस आध्यात्मिक साधना में जोर-शोर से लगें और सफल हों, इसी शुभकामना के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। ❑

ये चलना राह नाजुक है

एक प्रसिद्ध आश्रम था जहां बहुत सारे साधु रहते थे। लोगों में वहां के संतों के प्रति बड़ी निष्ठा थी। समाज प्रशंसनीय था। एक दूसरे राज्य में बड़ा-सा प्रसिद्ध मंदिर था। वहां एक योग्य साधु की जरूरत हुई तो उस प्रसिद्ध आश्रम को पत्र भेजा गया कि एक संत की जरूरत है, आप जल्दी भेजें। पत्र आया। वहां के गुरु ने पत्र पढ़ा। पास में एक शिष्य खड़ा देख रहा था। आश्रम के गुरु जी ने दस साधु भेजे। पास में खड़ा शिष्य जानता था केवल एक साधु के लिए पत्र आया है गुरुजी दस भेज रहे हैं, लेकिन वह शिष्य मर्यादावश पूछा नहीं।

समय बीतता गया। महीनों दिन बाद उस मंदिर से फिर पत्र आया कि आपने जो एक साधु भेजा था वह पहुंच गया है और सचमुच में बहुत ही योग्य संत है। मंदिर का संचालन अच्छे ढंग से सम्हाल लिया। इस पत्र को भी वह शिष्य देख रहा है, तब उससे रहा नहीं गया। उसने गुरुजी से निवेदन किया—गुरुदेव, उस मंदिर से एक संत की मांग हुई थी तब आपने दस साधुओं को भेजा। अब पत्र आया है कि आपने एक साधु भेजा था वह पहुंच गया तो बाकी नौ साधु कहां गये? गुरुजी ने शिष्य को बताया कि बेटा, चले तो थे दस, मगर पहुंचे केवल एक। जाते-जाते रास्ते में धन-दौलत से सम्पन्न मंदिर पड़ा, तो दो साधु वहां की पुरोहिताई करने लग गये, दो साधु किसी सेठ के यहां मान-प्रतिष्ठा में भूल गये, दो साधु राजनीति में नेता चुन लिये गये, दो साधु परीक्षा दिलाई तो नौकरी लग गई। इस प्रकार वहां तक पहुंचा केवल एक। बेटा, दस चलते हैं तो कोई एक पहुंचता है। यह मार्ग तलवार के धार में चलने से भी बढ़कर है। कबीर साहेब ने कहा है—

कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।
ये चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या॥

प्रस्तुति-सौम्येन्द्र दास